समालोचनार्थ

राजगृह

—भँवरलाल नाहटा

प्रकाशक :—
श्री जैन सभा
७, शम्भू मल्लिक लेन, कलकत्ता ।

मूल्य दो रुपया

मुद्रक :—
नवरत्नमल्ल सुराना
सुराना प्रिंटिंग वर्क्स
४०२, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता ।

राजगृह

उपलब्ध इतिवृत्त के अनुसार प्राचीन भारत की राजनगरी राजगृह आज मूक प्रकृति का क्रीड़ास्थल है। जिन घाटियों व उपत्यकाओं में भारतीय मानव की शतोमुखी प्रवृत्तियां केन्द्रीभूत होती थीं वहां या तो कुछ वन्य पशु पक्षी अपना सदाका-सा अनुपयोगी जीवन बिताते हैं अपना भारतीय संस्कृतिके अनुयायी तीर्थ पर्यटन के बहाने कभी आ जाकर यह जनाते रहते हैं कि पूर्वजोंके उस केन्द्र को वे सर्वथा विस्मृत नहीं कर पाये हैं।

हमारे गौरव का वह केन्द्र था यह तो पुरातन साहित्य भी हमें बतलाता है और साथ २ कुछ निकाले हुए ध्वंशावशेष भी प्रमाणित करते हैं कि कला व कौशल का क्रीड़ास्थल रहा था यह स्थान। इसी नगरी से प्रारंभ होता है हमारा आधुनिक इतिहास विज्ञान। क्योंकि अबतक की शोध इससे आगे नहीं बढ़ पायी है। मोहनजोदरो की प्राचीनता सर्व प्रसिद्ध होने पर भी इतिहास की कड़ी वहां तक नहीं पहुंची है। यदि कथा साहित्य का अवलंबन किया जाय तो राजगृह केवल २००० वर्ष की ही नहीं बल्कि इसके अनेको हजार वर्ष पूर्व की गाथा कह सकता है हमें भारतीय संस्कृति की गोद में पले हुए अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों का आदि श्रोत इसी नगरी के आसपास से प्रवाहित हुआ था यह भी हमारे लक्ष्य में लाने लायक बात है।

तीर्थयात्रा के अतिरिक्त प्राचीन गौरव गाथा को सुनने देखने की दृष्टि से जाने वाले महानुभाव पद २ यह अनुभव करते हैं कि इन उपत्यकाओं के कोने २ में मानों अतीत की अमिट स्मृतियाँ विद्यमान हैं एवं आगंतुक को कहती हैं कि हमारी भी बात सुन जाओ यहां किसी दिन देश की रक्षा की बातें हुआ करती थी, यहां दार्शनिक विवेचन का केन्द्र था, यहां नागरिक अपनी सुख दुख कहानी कहा करते थे, यहां किसी महात्मा का निवास था, यहां कला कौशल की प्रतियोगिता हुआ करती थी तो यहां किसी के भाग्य का निर्णय हुआ करता था। किसी को शायद यह ध्वनि भी सुनाई दे कि भौतिक विकास की ओर दौड़ती हुई आज की प्रगति को, ऐ नये मानव ! जरा सी मोड़ ले और आध्यात्मिक विकास की ओर ले जा, अन्यथा भावी विनाश को नहीं रोक सकोगे और हमारी ही तरह एक दिन कोई दूसरा ही तुम्हारी मृत्यु गाथा सुनेगा।

राजगृहने महावीर एवं गौतम बुद्ध के उपदेश अपने वक्षस्थल में अंकित कर रखे हैं। त्याग एवं सेवा की अन्यतम अनेक विभूतियाँ वहाँ अपना मधुर गीत गा चुकी है। आज भी उन्हीं गाथाओं को लेकर वह श्मशान भूमि जीवित है मरी नहीं। मरी हुई कौन कह सकता है उसे जहां अतीत की लुभावनी स्मृतियाँ जाग उठती हों, जहां पद २ पर गौरव गाथा लिखी हो उस पुण्य भूमि राजगृह को अपनी श्रद्धा प्रगट करते हुए प्रत्येक भारतीय का मुख गौरवान्वित हो जाता है।

सचमुच राजगृह मनुष्यों में राजाओं का गृह-आवास था केवल राजनीति के राजा ही नहीं बल्कि मानवता के राजा भी यहाँ रह चुके हैं। भारतीय स्वातंत्र्य के बाद आज अपने सत्ताधीशों से यह आशा रखता है कि राजगृहके धरातल से प्राचीन गौरव के ध्वंशावशेषों का पुनरुद्धार कार्य वे पूरी देख रेख के साथ आरंभ करें ताकि संसार के सामने इस प्राचीन महा-नगरी की विशेषता स्पष्ट रुपमें रखी जा सके। रोम एथेन्स आदि प्राचीन युरोपीयन केन्द्रों के समान यहां भी मिट्टी व घास के नीचे हमारी विभूति दबी पड़ी है।

भारतीय होने के नाते हमारा यह कर्त्तव्य है कि वहाँ जाकर हम वहां से शांति व मानवता के उपदेश ग्रहण करें एवं पुनः भारत के गौरव को उच्च शिखर पर चढ़ावें।

जैन व बौद्ध धर्मो की अमिट छाप राजगृह पर है एवं राज गृह से ही भारतीय संस्कृति के इन स्तंभो को विकास पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा मिली है अतः इनके अनुयायियों का तो यह प्रथम कर्त्तव्य हो जाता है कि वे इनके पुनरुद्धार के लिये अपने समय व साधन का सदुपयोग करें।

शुभकरणसिंह

प्राक्कथन

महातीर्थ राजगृह धार्मिक और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होनेके साथ साथ अध्यात्मिक और अधिभौतिक उभय आरोग्यप्रद है। चिरकाल से भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों ने इस तीर्थ के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पण की है। यहां की अष्ट प्रातिहार्य युक्त एवं नवग्रहादि परिकर युक्त कुषाण गुप्त एवं पालकालीन जैन प्रतिमाएं भारतीय शिल्प के विकाश में अपना विशेष स्थान रखती हैं। इस पवित्र भूमि के गर्भ मे सहस्राब्दियों की इतिहास सामग्री दबी पड़ी है जो उद्धार किये जाने पर विश्व संस्कृति में भारतीय संस्कृति को सर्वोच्च स्थान दिलाने का सामर्थ्य रखती है।

यह पुस्तिका राजगृह का इतिहास नहीं पर उसकी प्रस्तावना मात्र है सोलह और आठ वर्ष पूर्व लिऐ गये कुछ संक्षिप्त विवरण व लेखों की छापे पुरातत्वप्रेमी मुनिराज श्री कान्तिसागरजी एवं पूज्य काकाजी अगरचन्दजी नाहटा की सतत प्रेरणा से लिखागया एक निबन्ध मात्र है जिसने कुछ विस्तृत हो जाने पर पुस्तिका का रूप धारण कर लिया। इसका लेखन राजगृह मे सैकडों मोल दूर बीकानेर में हुआ है। शीघ्रतावश लिखी हुई पाण्डुलिपि ही प्रेस में दे दी गयी और वह उसी रूप मे प्रकाशित हो रही है अतएव इसमें अनेकों स्खलन अनिवार्य है। विद्वान पाठकों से सूचना पाकर द्वितीयावृत्ति में संशोधन अवश्य वांछनीय है। राजगृह की प्राचीन शिलालिपि जो सोनभंडारके

अभिलेख एवं इतर स्थानों में प्राप्य है,—पर प्रकाश डालने का कार्य अध्यवसायी विद्वानों का है। मेरे जैसे अल्पज्ञ से इसकी आशा रखना व्यर्थ है। आशा है विद्वान लोग अपनी कृतियों द्वारा राष्ट्र भाषा हिन्दी का भण्डार भरेंगे। उदयगिरि की उपत्यका में स्थित शेल कैरेकर्स का श्री वासुदेवशरण जी अग्रवाल के सूचनानुसार हिन्दी पर्याय 'संख लिपि' है।

राजगृह तीर्थ का यात्री वहां के संबन्ध में साधारण ज्ञान प्राप्त कर सके इस लिये किया हुआ प्रयास पाठकों को रुचिकर होगा।

अपने परम श्रद्धास्पद मित्र श्री शुभकरणसिंहजी बोथरा ने इस पुस्तिका की प्रस्तावना लिख देने की कृपा की है। श्रीयुत् विजयसिंहजी नाहर व बाबू कन्हैयालालजी श्रीश्रीमाल ने अपनी राजगृह चित्रावली का उपयोग करने के साथ साथ उचित परामर्शादि द्वारा उपकृत किया है।

इसे प्रकाशित करने का श्रेय जैन सभा के माननीय मंत्री श्री नवरतनमल जी सुराना को है जिन्होंने सभा की ओर से राजगृह में संचालित जैन औषधालय के सहायतार्थ इसका प्रकाशन किया है। इन सभी मित्रों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता हुआ आशा करता हूं कि पाठकगण इसे अधिकाधिक अपनाकर "एक पंथ दो काज" का लाभ उपार्जन करेंगे।

कलकत्ता
आश्विन पूर्णिमा
२००५

भंवरलाल नाहटा

राजगृह का दर्शनीय स्थान

चित्र परिचय

(१) विपुलगिरि

१ हेमन्तमुनि श्वेताम्बर मन्दिर

२ श्री महावीर स्वामीजी
दिगम्बर मन्दिर।

३ श्री चन्द्रप्रभुजी दिगम्बर
मन्दिर।

४ श्री महावीर स्वामीजी
समवसरण दिगम्बर म०।

५ श्री मुनिसुव्रत स्वामीजी
दिगम्बर मन्दिर।

६ श्री मुनिसुव्रत स्वामीजी
श्वेताम्बर मन्दिर।

(२) रत्नगिरि

७ श्री चन्द्रप्रभुजी
दिगम्बर मन्दिर।

८ श्री चौमुखजी श्वेताम्बर
मन्दिर।
श्री शान्तिनाथजी
श्री पार्श्वनाथजी
श्री वासुपूज्यजी
श्री नेमिनाथजी

(३) उदयगिरि

९ श्री ऋषभदेवजी
दिगम्बर मन्दिर।

१० श्री पार्श्वनाथजी
श्वेताम्बर मन्दिर।

(४) सुवर्णगिरि

११ श्री ऋषभदेव जी श्वे० म०

१२ श्री शन्तिनाथजी दि० म०

१३ निर्माल्य कूप।

(५) वैभारगिरि

१४ सुवर्णभण्डार (गुफा)

१५ धन्ना शालिभद्रजी
श्वेताम्बर मन्दिर।

१६ श्री महावीर स्वामीजी
श्वेताम्बर मन्दिर।

१७ श्री चौबीस महाराज

१८ श्री पार्श्वनाथजी श्वे० म०

राजगृह

मन्दिर व राजगृह

राजगृह

'राजगृह' भारत का एक अति प्राचीन और समृद्धिशाली नगर रहा है। भारतीय इतिहास के कितने ही पट-परिवर्तन इसी भूमि पर हुए हैं। प्राचीन आर्यावर्त के सुप्रसिद्ध नगरों में इसकी गणना है। मगध राज्यकी पुरानी राजधानी एवं भारत की तत्कालीन महत्वपूर्ण नगरी होने का सौभाग्य राजगृह को प्राप्त हुआ है।

बिहार प्रान्त श्रमण संस्कृति का मुख्य उद्गम स्थान है। इसी प्रान्तमें जैन तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर का आविर्भाव हुआ। यहीं वे ३० वर्ष की चढ़ती जवानी में राजकुमार पद को त्याग कर तपस्वी बने। अपने साधक जीवन और कैवल्यावस्था का दीर्घकाल उनने इसी मगध देश में बिताया। भगवान गौतम बुद्ध की धार्मिक प्रवृत्तियों का भी यही प्रधान केन्द्र रहा है।

बिहार प्रान्त के पटना और गया जिलों को प्राचीन मगध कहा जाता है। जैन शास्त्रों में वर्णित २५॥ आर्य देशों व १६ जनपदों में इसकी मुख्य रूप से गणना हुई है—एवं भारत की १० प्रमुख राजधानियों * में एक राजगृह भी है। मगध देशको भारत के प्रधान तीर्थों में बतलाया गया है। श्रमण संस्कृति के अत्यधिक प्रचार के कारण ही संभवत: इसे ब्राह्मण-ग्रन्थों में पापभूमि कहा गया पर उनके महाभारत, वायुपुराणादि धर्मग्रन्थ इस पवित्र भूमि को पतित पावन मानने में पश्चात्पद नहीं है। वर्तमान समय में हिन्दू, जैन, बौद्ध-सभी धर्मवालों के पवित्र तीर्थ यहाँ विद्यमान हैं।

अति प्राचीन काल से राजगृह मगध देश की राजधानी थी। लाखों वर्ष पूर्व २० वें जैन तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथ स्वामी के च्यवन, जन्म, दीक्षा व ज्ञान—चारों कल्याणक इसी राजगृह में हुए। यादव कुलतिलक श्रीकृष्ण वासुदेव के प्रतिस्पर्द्धी जरासंध प्रतिवासुदेव की राजधानी भी यही राजगृह नगरी थी। जैन शास्त्रोंमें इसका वर्णन बड़े गौरव के साथ किया गया है।

* जबूद्दीवे भारहे वासे दस रायहाणीओ पन्नता तजहा—चपा महुरा वाणारसी य सावत्थी तहय साकेतं हत्थिणउर कंपिल्ल महिला कोसबि रायगिह। (ठाणागसूत्र)

भगवान् महावीर के समय में इसकी भव्यता, विशालता, सुन्दरता और समृद्धि अपनी सीमा को पार कर चुकी थी। यहाँ सात-सात मंजिले गगनचुंबी मकान, राजप्रासाद व श्रेष्ठीगणों के आवास स्थल थे। विशालता में कोशों तक फैली हुई इस नगरी के नालन्दा आदि 'पाड़ा' कहलाते थे। इस व्यापार प्रधान नगरी से तक्षशिला, प्रतिष्ठान, कपिलवस्तु, कुशीनारा प्रभृति भारत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरों के मार्ग बने हुए थे। भगवान महावीर ने राजगृह में १४ चातुर्मास किये और सैंकड़ों बार यहां के उद्यानों में खासकर ईशान कोणस्थित 'गुणशिल चैत्य' ⁑ और वैभारगिरि पर प्रभु के समवशरण हुए थे। किसी भी नगर के अति प्राचीन हो जाने पर उसका नामान्तर और स्थानान्तर हो जाना स्वाभाविक हो जाता है इसी प्राकृतिक नियमानुसार राजगृह भी भिन्न-भिन्न राजाओंके समय में भिन्न-भिन्न नामों से प्रसिद्ध हुआ आवश्यक नियुंक्त्यवचूर्णी में लिखा है कि पूर्वकाल में इस नगर का नाम क्षितिप्रतिष्ठित-पुर था। जितशत्रु राजा ने इसे क्षीणवास्तुक समझकर वास्तुशास्त्रविद् पंडितों को सम्मति से नव्य नगर स्थान

⁑ तस्सण रायगिहस्स वहिया, नगरस्स उत्तर पुरच्छिमे दिसी भाए गुणसीलए नाम चेईए होत्था।'—भगवतीसूत्र शतक १ उ० १

की गवेषणा की और फले हुए चनोंके हरे भरे खेतों को देखकर चणकपुर बसाया। कालान्तर में उसको भी क्षीण समझ कर अजेय वृषभ—बैल देखकर ऋषभपुर और फिर किसी राजा ने कुश-दर्भ गुल्म देखकर कुशाग्रपुर बसाया। वहाँ बार-बार अग्निदाह होने से प्रसेनजित् राजा ने पुनः राजगृह नगर की स्थापना की।

महाराजा प्रसेनजित् का उत्तराधिकारी पुत्र महाराजा श्रेणिक (बिम्बसार) था। राजगृह के पुराने राजवंश 'बार्हद्रथ' (बृहद्रथ, जरासंघ के पिता) का अन्त हो चुका था। इसके बाद न जाने किन-किन राजवंशोंका राज्य रहा पर अश्वघोष ने बुद्ध चरितमें महाराजा श्रेणिकको हर्यंक कुल का बतलाया है। महावंश के अनुसार बिम्बसार का राज्याभिषेक १५ वर्ष की अवस्था में हो गया था, उसने अंगदेशके राजाको मारकर उसे मगध राज्य में मिला लिया और कुछ वर्ष चंपानगर में पिता के प्रतिनिधि स्वरूप रहकर फिर राजगृह में चला आया।

महाराजा श्रेणिक मगध देश के राज सिंहासन पर बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने पिताके बसाये राजगृह को खूब समृद्धिशाली बनाया जिसके कारण कितने ही विद्वानों ने तो इसे नवीन राजगृह को बसानेवाला ही माना है। चीनी

यात्री फाहियान ने तो नवीन राजगृह को बसानेवाला महाराजा अजातशत्रु (कूणिक—श्रेणिकपुत्र) को माना है पर यह कथन भ्रांतिपूर्ण है क्योंकि अजातशत्रु-कोणिक, पिता को कैदकर, चिरकाल तक राजगृह को अपनी राजधानी नहीं रख सका था कारण पिता की आत्मघातके द्वारा हुई मृत्यु के शोक व पश्चाताप से संतप्त कोणिक को राजगृह में रहना असह्य हो गया और उसने अंगदेश की राजधानी चंपा को जिसे महाराजा श्रेणिक ने मगध में मिला लिया था—अपनी राजधानी बनायी। बौद्ध ग्रन्थ मज्झिम-निकाय में आजातृशत्र द्वारा राजगृह के गढ़ निर्माण का उल्लेख है। राजगृह की तरह चंपानगर भी अत्यन्त समृद्धि और श्रमण संस्कृतिका केन्द्र था। अजातशत्रु-कोणिक की मृत्यु के बाद उसके पुत्र उदायी ने वहाँ से हटाकर अंग व मगध की राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) को बनाया। आजकल यह सारा प्रदेश बिहार प्रान्त कहलाता है। भगवान महावीर व बुद्ध तथा उनके अनुयायी-वर्ग के बिहार होने तथा बौद्ध बिहारों की अधिकता के कारण सारे प्रान्त का ही नाम बिहार पड़ गया।

भगवान महावीर के समय राजगृह परम समृद्ध और वैभवशाली नगर था। जैनागमों व इतर ग्रन्थों में इस

महा नगरी का विस्तृत वर्णन प्रभावशाली ढंग से पाया जाता है। भगवती-सूत्र वृत्तिमें निर्दिष्ट औपपातिक सूत्रगत नगर वर्णन तत्कालीन राजगृह के वैभव पर अच्छा प्रकाश डालता है। इन ग्रन्थों में किये गये नगर वर्णन को देखने से तत्कालीन ऋद्धिसंपन्नता व नगर सौंदर्य का चित्रसा खिंच जाता है। जैन शास्त्रानुसार यहाँ गुणशिला, मंडिकुच्छ, मोग्गरपाणि प्रभृति यक्षों के अनेक चैत्य थे।

राजगृह से मगधकी राजधानी हट जानेसे क्रमशः उसका वैभव और विशाल रूप क्षीण होने लगा। सुप्रसिद्ध जैन सम्राट खारवेल ने अपने राज्यके ८ वें वर्ष में राजगृह पर चढ़ाई की थी। प्राचीन राजगृह तो ईसा के ४०० वर्ष बाद जब चीनी यात्री फाहियान आया तभी उजड़कर जन शून्य हो चुका था। नवीन राजगृह के पश्चिमी द्वारसे ३०० कदम पर अजातशत्रु के बनवाये सुंदर बौद्ध स्तूप की अवस्थिति और नगर के पूर्वोत्तर कोण में अम्बपाली के उद्यान में जीवक के द्वारा बनवाये हुए बौद्ध बिहारों का भी फाहियान ने उल्लेख किया है।

प्राचीन राजगृह पाँच पहाड़ों के दून में अवस्थित था। इसी कारण पुराणों में तथा महाभारत के सभापर्व में इसे 'गिरिव्रज' कहा है। चीनो यात्रियों के अतिरिक्त नवीन

और प्राचीन राजगृह का भेद अन्य किसी साहित्य में नहीं। आवश्यक निर्युक्त्यवचूर्णी तथा श्री जिनप्रभसूरिजी कृत वैभारगिरि कल्प के अनुसार प्राचीन राजगृह का नाम 'कुशाग्रपुर' था जिसे चीनी यात्री सुयेनच्वांग ने 'किउशीलो पुलो' लिखा है। प्राचोन राजगृह के चिह्न ५ मील के घेरे में अब तक विद्यमान है। डा० बुकनन जिन्होंने ता० १८ से २० जनवरी सन् १८१२ में राजगृह का अवलोकन किया था (इसका वर्णन रिपोर्ट के लगभग २२ पेज छोड़कर मि० मौण्टगोमेरी मार्टिन ने सन् १८३८ में प्रकाशित किया था) जिनके मतानुसार दुर्ग में पश्चिमोत्तर कोने में नगर बसा था।

'सोनभंडार' के पश्चिमका भाग 'जरासंध का अखाड़ा' कहलाता है। जहाँ एक स्थान पर लोहे की बेड़ियाँमिली— उसे लोग जेलखाना या कोतवाली कहते हैं। दक्षिण पश्चिम दिशामें एक नये दुर्ग के चिह्न मिलते हैं जहाँ पत्थरका प्राचीर बना था। पूर्व और उत्तर की ओर १२ हाथ मोटी पत्थर की दीवार और पूव दिशाके प्रवेशावरोध के लिए १३ हाथ मोटी पत्थर की दीवार दक्षिण की पर्वत श्रेणीसे जा मिली थी, भीतर दुर्ग ६०० गजके घेरे में था। इस समय प्राचीन राजगृह का अधिकांश भाग

घने जंगल से परिपूर्ण है। प्राचीन दीवारें, कुछ जलाशय, कूप व कुछ ध्वंसावशेषों के अतिरिक्त विशेष महत्वपूर्ण कुछ भी नहीं देखा जाता। प्राचीर के भग्नावशेष नगर की सीमा व स्थानादि के निर्णय करने में बड़े सहायक हैं। 'मणिहार मठ' नामक स्थान एक प्राचीन और विशाल इमारत है जिसे जैन साहित्य में सेठ शालिभद्र का निर्माल्य कूप बतलाया है। वहांसे प्राप्त शालिभद्र की चरण-पादुकाएँ सुना है कि अब भी पटना म्यूजियम में हैं। इस स्थानको १७ वीं शताब्दीके कवि विजयसागर ने हांसापुर नगर लिखा है। डा० बुकनन के समय में भी उस स्थान को आसपास के लोग हंसपुर नगर के नामसे पुकारते थे। उन लोगोंका मत था कि, यह हंसपुर पुराने राजगृह का चिह्न है पर बुकनन साहब खोजके बाद इस निर्णय पर पहुंचे कि, वहाँ की स्थिति ऐसी है तथा कोई चिह्न भी ऐसा नहीं मिलता कि वहाँ पर किसी प्राचीन नगर का अस्तित्व स्वीकार किया जाय। उदयगिरि से स्वर्णगिरि जानेके मार्ग में बांई' तरफ एक पथरीले स्थान को जिसके चारों तरफ पक्की चहार दीवारी बनी हुई है, 'जरासंध की रणभूमि' कहते हैं। चट्टानों पर विचित्र अक्षरों के लेखसे खुदे हैं जिसे 'शैल शिलालेख' (Shell Inscription) कहते हैं।

कई विद्वानों का मत है कि, प्राचीन राजगृह में काठके मकान थे जो अग्निप्रकोप में स्वाहा हो गये। कुछ विद्वानों का ख्याल है कि, वैभारगिरि की पहाड़ी और उपत्यका में दुर्ग-निर्माण हुआ था किन्तु भगवती सूत्र महातपोपतीर प्रभव श्रोतको वैभारगिरि के पास राजगृह के बाहरी भाग में सूचित करता है तथा भगवान के समोशरण प्राय: वैभारगिरि पर हुआ करते थे। अत: यदि नगर वैभार पर्वत के ऊपर होता तो राजगृह को तलहट्टिका में लिखा जाता। पं० विजयसागर वैभारगिरि पर ३६००० घर होने के पक्ष में हैं। श्री जिनप्रभसूरिजी लिखते हैं "वैभारगिरि की उपत्यका में राजगृह और उस में ३६००० वणिकों के घर थे जिनमें आधे घर बौद्धों के थे।

चीनी यात्री फाहियान घाटी के माग से पहाड़ के किनारे पूर्व-दक्षिण चलकर गृध्रकूटके पास आया। पहाड़ पर दक्षिणाभिमुखी एक-पाषाणी कन्दरा में बुद्धदेव के ध्यान का स्थान, पश्चिमोत्तर दिशामें आनन्द का ध्यान गुफा थी। देवमार गिद्धरूप में आनन्द को डराने आया। बुद्धदेवने पत्थर फोड़कर अपना हाथ बढ़ाकर आनन्दका कंधा ठोंका जिससे, वह निर्भय हो गया। फाहियान लिखता है कि, वह दरार अबतक विद्यमान है। कंदरा के सामने अर्हन्तों

के ध्यान करने की सैंकड़ों गुफायें हैं। फाहियान के समय में भी बुद्धदेव का धर्मोपदेश मंडप गिरकर ईंटों के खंडहर के रूप में परिवर्तित हो चुका था। बुद्धदेवने यहाँ सुरंगम सूत्रका उपदेश दिया था।

इस समय गृध्रकूट का मार्ग बहुत अच्छा है। वहाँ मन्दिर के अवशेष एवं एक गुफा में मस्तक विहीना सुंदर बौद्ध प्रतिमा विराजमान है जहाँ वर्मा के बौद्ध यात्री सोने के वर्क चढ़ाकर धूप दीपादि से पूजा करते हैं। ऊपरवाली गुफा में कुछ भी नहीं है।

फाहियान प्राचीन नगर से निकलकर करण्डवेणु वन विहार में गया, वहाँ उस समय भिक्षुओंका निवास था। वहाँ से पिप्पल गुहा जहाँ भगवान बुद्ध भोजनके बाद बैठकर ध्यान करते थे फिर उससे पश्चिम शतपर्णी गुहामें गया वहाँ एक स्तूप था, इस गुहा में बुद्धदेव के महानिर्वाण के बाद ५०० अर्हन्तों ने पिटकोंका संग्रह किया था। सोनभंडार को कनिंगहम साहब ने सतपर्णी गुफा बताया, पर बेगलार आदि पश्चात्य विद्वान् इस बातसे सहमत नहीं है। सोनभंडार निसन्देह जैन गुफा है जहाँ प्राचीन शिलालेख एवं मूर्त्तियों आदि अद्यावधि विद्यमान हैं।

राजगृह में उपरोक्त गृध्रकूटके अतिरिक्त पाँच पहाड़ हैं

जो जैन तीर्थों के रूपमें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। उन पहाड़ों के नाम ये हैं—(१) विपुलगिरि (२) रत्नगिरि (३) उदयगिरि (४) स्वर्णगिरि (५) वैभारगिरि। इन पहाड़ों के नाम व क्रम में कुछ मतभेद है। प्रथम पहाड़ विपुलाचलको महाभारत में चैत्यक व बौद्ध ग्रंथों में वेपुल्लो लिखा है। रत्नगिरि को महाभारत में ॠषिगिरि, पाली ग्रंथों में पंडव और फाहियानने पिप्पलगुहा लिखा है। बैभारगिरि को पाली ग्रंथों में बैभार और फाहियान ने शतपर्णी गुहा लिखा है। ऐसा श्री० जगमोहन वर्मा ने 'फाहियान' के उपक्रम में लिखा है। परन्तु गुहा शब्द गुफा का द्योतक है पहाड़ का उससे उद्‌बोधन नहीं होता।

व्यास कृत महाभारत में वैहार (वैभार), वराह, वृषभ, ॠषिगिरि और चैत्यक नाम से इन पाँच पहाड़ों को संबोधित किया है। दिगम्बर ग्रन्थ 'निर्वाण भक्ति' में वैभार, ॠष्यद्रि, विपुल और बलाहक नाम लिखे हैं। इसके ॠष्यद्रि का अर्थ टीकाकार श्री प्रभाचंद्र ने 'श्रमणगिरि किया है। यति वृषभ की तिलोयपण्णति के तथा षट् षण्डागम की धवला टीका में वीरसेन स्वामी ने इन पाँच पहाड़ों के कारण राजगृह को पंचशैलपुर या पंचशैल नगर लिखा है। शक संवत् की चतुर्थ शती में यति वृषभ कृत तिलोयपण्णत्ति को वर्णन इस प्रकार है—

सुर खेयर मण हरणे गुण गामे पंचसेल णयरम्मि ।
विउलम्मि पव्वदवरे वीर जिणो अट्ठकत्तारो ।।६५।।

चउरस्सो पुव्वाए रिसि सेलो दाहिणाए वैभारो ।
णइरिदि दिसा ए विउओ दोण्णि तिकोणट्ठि दायारा ।।६६।।

चाव सरिच्छो छिण्णो वरुणाणिल सोम दिस विभागेसु ।
ईसाणाए पंडू वण्णासव्वे कुसग्ग परियरणा ।।६७।।

अर्थात्—देव और विद्याधरों के मन को मोहित करनेवाले और सार्थक नाम से प्रसिद्ध पंचशैल (पाँच पहाड़ों से सुशोभित) नगर अर्थात् राजगृही नगरी में, पर्वतों में श्रेष्ठ विपुलाचल पर श्री वीर जिनेन्द्र ने अर्थ फरमाया ।।६५।। राजगृह नगर के पूर्व में चतुष्कोण ऋषिशाल, दक्षिण में वैभार और नैऋत्य दिशा में विपुलाचल पर्वत है। ये दोनों त्रिकोणाकृति युक्त है ।।६६।। पश्चिम, वायव्य और उत्तर दिशा में फैला हुआ धनुषाकार छिन्न नामक पर्वत है और ईशान दिशा में पांडु नामक पर्वत है। ये सब पर्वत कुश समुह से वेष्टित हैं ।।६७।

धवला टीका में और जयधवला में उद्धृत निम्न श्लोक इन पहाड़ों के नाम, दिशा व आकार के संबंध में प्रकाश डालते हैं—

ऋषिगिरि रैन्द्राशायां चतुरस्रो याम्य दिशि च वैभार।
विपुलगिरि नैऋत्यामुभौ त्रिकोणौ स्थितौ तत्र॥
धनुराकारश्छिन्नो * वारुण-वायव्य-सोमदिक्षु ततः
वृत्ताकृतिरैशान्या पाण्डुः एवं कुशाग्र वृत्ताः॥

जिनसेनकृत हरिवंश पुराण के तृतीय सर्ग में इनका उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

ऋषि पूर्वो गिरिस्तत्र चतुरस्र सनिर्झरः
दिग्गजेन्द्र इवेन्द्रस्य ककुभं भूषयत्यलम्॥५३॥
वैभारो दक्षिणामासां त्रिकोणाकृतिराश्रितः
दक्षिणापर दिग्मध्यं विपुलश्च तदाकृतिः॥५४॥
सज्य चापाकृति स्तिस्रो दिशो व्याप्य बलाहकः
शोभते पाण्डुको वृत्तः पूर्वोत्तर दिगन्तरे॥५५॥

धवला, जयधवला के श्लोकों में ऋषिगिरि, वैभार, विपुल, छिन्न और पाण्डु पहाड़ों का नाम लिखा है। हरिवंश पुराण छिन्न के स्थान में बलाहक बतलाता है। तिलोयपन्नति में छिन्न और कसायपाहुड की जयधवला टीका में भी छिन्न शब्द आया है। चन्द्र पाठान्तर है। निर्वाणभक्ति और हरिवंश का बलाहक (बराहक) तथा महाभारत का बराह एक ही प्रतीत होता है। बौद्ध ग्रंथ 'चूलदुक्खक्खंधसुत्त'

* चन्द्रो०

में राजगृह के ऋषिगिरि की कालशिला का वर्णन आया है जहाँ बहुत से निग्गंठ साधुओं ने तपश्चर्या की तीव्र वेदना सही थी। चतुर्थ पहाड़ स्वर्णगिरि ही ऋषिगिरि होना संभव है क्योंकि प्रभाचंद्र ने निर्वाणभक्ति की टीका में श्रमणगिरि लिखा है। 'ऋषि और श्रमण एकार्थ वाची हैं तथा श्रमण और सुवर्ण के अपभ्रंश की समानता के कारण स्वर्णगिरि प्रसिद्धि में आ गया हो'—पं० नाथूरामजी प्रेमी के ये विचार युक्तिसंगत मालूम होते हैं। दिगम्बर जैन समाज जिस सोनागिरि को श्रमणगिरि सिद्धक्षेत्र मानता है, वह दतिया राज्य का सोनागिरि न होकर राजगृहका चतुर्थ पहाड़ ही होना चाहिये।

श्री० कामताप्रसाद जैन ने 'जैन तीर्थ और उनकी यात्रा' में लिखा है कि, तीर्थरूप में राजगृह की प्रसिद्धि भगवान महावीर से पहले की है। सोपारा (थाना के निकट) से एक आर्यिका संघ यहाँ की वंदना करने ईसाकी प्रारम्भिक अथवा पूर्वीय शताब्दियों में आया था। धीवरी पूतिगंधा भी उस संघ में थी। वह क्षुल्लिका हो गई थी और यहीं नीलगुफा में उसने समाधि-मरण किया था।

राजगृह नगरसे भगवान महावीर का जन्म-जन्मान्तरों का संबंध था। १६ वें भवमें वे विशाखनंदी और अठारहवें

भवमें त्रिपृष्ट नामक त्रिखण्डाधिप वासुदेव यहीं हुए थे। भगवान महावीर के उपदेश से यहाँ हजारों प्राणियों ने जैन धर्म की शरण लेकर संसार-समुद्र का पार पाया। यहाँ मेतार्यमुनि, अइमत्ता, धन्ना, शालिभद्र, मेघकुमार, अभय-कुमार नन्दिषेण, अर्जुनमाली, कयवन्ना, जम्बूस्वामी, प्रभास गणधर, शय्यंभवसूरि, पूणिया श्रावक प्रभृति अगणित महापुरुष हुए हैं उन सबका यदि परिचय दिया जाय तो निःसन्देह एक बड़ा भारी ग्रन्थ तैयार हो सकता है। प्रभु वीर के ११ गणधर वैभारगिरि शिखर पर निर्वाण को प्राप्त हुए थे। मध्यकाल में बौद्ध धर्म इस देश में राज्याश्रय पाकर खूब फला-फूला, उनके बिहार यत्र तत्र सर्वत्र दृष्टिगोचर होते थे। श्री जिनप्रभसूरिजी ने अपने तीर्थकल्पस्थ वंभार गिरिकल्प में जो सं० १३६४ में निर्माण किया था, इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है। जैनों की बस्ती इधर बहुत कम रह गई थी फिर भी दूर देश के यात्री-संघ आते रहते और तीर्थ यात्रा करके लौट जाते थे। भगवान ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्ती भरतके मंत्री श्रीदल के सन्तानीय मन्त्रिदलीय (महत्तियाण) गौत्र के जैन श्रावक इधर प्राचीनकाल से निवास करते रहे हैं। उन लोगों ने राजगृह तथा मगध के नाना तीर्थों की रक्षा, जीर्णोद्धार व मंदिर निर्माणादि

कर बड़ी भारी सेवा की थी। उनके अभिलेख आज भी सर्वत्र दिखलायी पड़ते हैं। विशेष जानकारी के लिये हमारी 'मणिधारी श्री जिनचंद्रसूरि' पुस्तक देखना चाहिये।

राजगृह विभिन्न धर्मवालों के लिये उद्‌बोधन का केन्द्र रहा है। जिन धर्मों का 'अहिंसा' के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है, उनका तो यह प्रधान दृष्टिबिन्दु ही था। कहा जाता है कि, रूसके नोटबिच नामक यात्री को तिब्बत के हीमिस नामक मठ में ईसाका एक प्राचीन हस्तलिखित जीवन-चरित्र मिला है। वह पाली भाषा में है और बड़ी बड़ी दो जिल्दों में समाप्त हुआ है।

इस जीवनी से पता लगता है कि, वह इसराइल में पैदा हुआ था और उसके मां-बाप गरीब थे। १३-१४ वर्ष की उम्र में वह अपने मा-बाप से रूठकर घर से भाग निकला और हिन्दुस्तान में आया। यहाँ वह राजगृह, काशी और जगन्नाथपुरी आदि स्थानों में घूमता रहा और आर्य विद्वानों से वेदाध्ययन करता रहा। इसके बाद उसने पाली भाषा सीखी और वह शुद्ध बौद्ध हो गया। स्वदेशको लौट कर उसने अपना नया ही धर्म चलाना चाहा, इसी बखेड़े में उसे शूली पर चढ़ा दिया गया। इससे पता चलता है कि, अन्यान्य मतों के समान ही ईसाई धर्म भारत की

पुण्यभूमि में ही उत्पन्न हुआ और राजगृह का हाथ भी उसमें रहा है।

राजगृह स्वास्थ्य के लिये भी एक आदर्श स्थान है। वहाँ के गर्म पानी के कुण्ड अत्यन्त प्रसिद्ध और आश्चर्यजनक हैं। यहाँ का पानी इतना स्वच्छ, स्वास्थ्यप्रद और अच्छा है कि, लोग शीतकाल में यहाँ वायु सेवन के लिए आकर परम स्वास्थ्य लाभ करते हैं। स्वर्गीय पुरातत्त्वज्ञ श्री पूरणचन्दजी नाहर के पास मैंने संस्कृत का एक ऐसा हस्तलिखित ग्रन्थ देखा था जिसमें भारतवर्ष के इस प्रकार के जलकुण्डों का उनके गुण दोष सहित नैसर्गिक वर्णन था। जैनागमों में प्रधान व प्रामाणिक श्रीभगवती सूत्र में दूसरे शतक के ५ वें उद्देशक में वैभारगिरि के महातपोपतीर प्रभव नामक झरने का निम्नोक्त वर्णन किया है—

"एवं खलु रायगिहस्स नयरस्स बहिया वेभार पव्वयस्स आदूर सामंते एत्थणं महातवोवतीर प्पभवे नामं पासवणे पंच धणुसयाइं आयाम विक्खंभेणं, णाणा दुमखंड मंडित उद्देशे मस्सिरीए, पासादीए, दरिसणिज्जे, अभिरूवे, एत्थणं बहवे उसिण जोणीया जीवाय, पोग्गलाय उदगत्ताए वक्कमंति, विउक्कमंति, चयंति, उवविज्जंति-तव्व इरित्ते वियणं सया समिअं उसिणे, उसिणे आउयाए अभि-

निस्सवइ, एसणं गोयमा ! महातवोवतीर प्पभवे पासवणे, एसणं गोयमा ! महातवोवतीर प्पभवस्स पासवणस्स अट्ठे पन्नते।"

अर्थात् –'राजगृह नगर के' बाहर वैभारगिरि के पास 'महातपोपतीर प्रभव' नामक प्रस्त्रवण है। उसकी लंबाई चौड़ाई पांचसौ हाथ है। उसका बाहर भाग अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित, सुन्दर, हर्षदायक, दर्शनीय, रमणीय और संतोषप्रद है। उस झरनेमें उष्णकाय वाले अनेक जीव और पुद्गल पानी के रूप में उत्पन्न होते हैं, नाश, चय और उपचय प्राप्त करते है। तदुपरान्त उस झरने से हमेशा गरम गरम पानी झरता रहता है। हे गौतम ! यह 'महातपो पतीरप्रभव' नामक झरना है और इस महातपोपतीरप्रभव नामक झरने का यह अर्थ है।'

विशेषावश्यक सूत्र में भी इस झरने को 'महातपोपतीर प्रभव' नामसे एवं बौद्ध ग्रन्थों में तपोद नाम से उल्लेख किया है। श्री जिनप्रभसूरिजी 'तप्तशीताम्बु कुण्डानि कुर्युः कस्य न कौतुकम्" लिखकर अत्रस्थित अनेक कुण्डों की विद्यमानता स्वीकार करते हैं। पर भगवती और विशेषावश्यक केवल महातपोपतीर प्रभव झरने का अस्तित्व सूचित करते हैं। अतः संभव है कि, उसी झरने से भिन्न भिन्न कुण्डों का

पीछे से निर्माण हो गया हो या प्रधान करने का ही उल्लेख सूत्रों में आया हो। हिन्दू धर्मशास्त्रों में भिन्न भिन्न कुण्डों व स्थानों का भिन्न भिन्न नामों से तीर्थ रूप में उल्लेख किया गया है।

विक्रम की नवीं शताब्दी में कन्नौज के सुप्रसिद्ध राजा आम (नागावलोक) ने राजगृह नगर पर, जहाँ राजा समुद्रसेन राज्य करता था, बड़ी भारी सेना के साथ चढ़ाई की थी। उसने बहुत दिनों तक गढ़ को तोड़ने के लिये पत्थर के गोले फेंके, तप्त तैल व सुरंगादि निर्माण द्वारा कितने ही प्रपंच रचे पर इस दुर्गाह्य गढ़ को भग्न करने में असफल रहा। आखिर स्वगुरु सुप्रसिद्ध प्रभावक जैनाचार्य बप्पभट्टिसूरिजी से इस पर्वत सदृश महादुर्ग को हस्तगत करने के संबंध में प्रश्न किया। सूरिजी ने कहा— तुम्हारा भोज नामक पौत्र इसे अवश्य जीतेगा। यह हाल जानकर महा अभिमानी राजा आम १२ वर्ष तक वहीं पड़ाव डाले पड़ा रहा। जब उसके पुत्र दुंदुक के पुत्र जन्मा, तो उसका नाम भोज रखकर तत्काल सेना में लाकर राजगृह दुर्ग के सामने सुलाया। बालक भोज की दृष्टि पड़ते ही स्वतः दुर्ग द्वारादि अट्टालिकाएँ भूमिसात् होने लगी। शहर के नागरिक एवं पशु दब जाने के भयसे व्याकुल

होकर कोलाहल करते हुए भागने लगे। अंतमें राजा समुद्रसेन भी गढ़ छोड़कर चला गया। आम राजा के सैनिक नगर में प्रवेश करने लगे तो रुष्ट नगराधिष्ठायक व्यन्तर देव लोगों को मारने लगा। राजा आमने स्वयं साहस पूर्वक व्यन्तर को प्रसन्न करके उससे मित्रता कर ली।

व्यन्तर के निर्देशानुसार आम राजा की मृत्यु सं० ८९० मिती भाद्रपद शुक्ला ५ को मगध तीर्थ जाते हुए मगटोड़ा गाँव में गंगातट पर हुई थी। उपर्युक्त घटना प्रभावक चरित्रगत बप्पभट्टिसूरि चरित्र में वर्णित है, इससे स्पष्ट है कि, नागावलोक ने नवीं शताब्दी में राजगृह को भग्न कर अधिकृत किया था। यह नवीन राजगृह का भग्न होना चाहिये, क्योंकि प्राचीन राजगृह तो पहले ही नष्ट हो चुका था।

श्री प्रभाचन्द्रसूरि कृत प्रभावक चरित्र तथा प्रबंध कोशान्तर्गत श्री जीवदेवसूरि चरित्र से जाना जाता है कि, वायड़ निवासी श्रेष्ठी धर्मदेव के पुत्र महीधर और महीपाल में से जेष्ठ पुत्र महीधर श्वेताम्बराचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी के पास दीक्षा लेकर राशिलसूरि नामक आचार्य हुए। महीपाल भ्रमण करते हुए दिगम्बराचार्य श्रुतकीर्ति के पास दीक्षित हो स्वर्णकीर्ति नामक आचार्य हुए। जब ये राजगृह

में थे, इनकी माता खबर पाकर राजगृह आई और श्वेतांबर साध्वाचार एवं आहारशुद्धि की प्रशंसा द्वारा प्रतिबोध देकर ज्येष्ठ भ्राता रासिल्लसूरि के पास दीक्षा दिलाई। ये स्वर्णकीर्ति ही आगे चलकर प्रभावक आचार्य जीवदेवसूरि हुए।

सं० १३६४ में श्री जिनप्रभसूरिजी ने वैभारगिरि कल्प में तत्रस्थित त्रिकूट खण्डिकादि शिखर, रसकूपिका, गौतम स्वामी के मन्दिर के पास स्तूप एवं तीर्थ के अधिष्ठाता मेघनाद क्षेत्रपाल का उल्लेख किया है।

युगप्रधानाचार्य गुर्वावली से विदित होता है कि, कलिकाल- केवली श्री जिनचन्द्रसूरिजी महाराज की आज्ञा से वा० राजशेखर गणि ने स० १३५२ में राजगृह, नालन्दा, क्षत्रियकुण्ड प्रभृति तीर्थों की यात्रा करने के बाद राजगृह निकटवर्ती उद्दड बिहार नगर में चातुर्मास किया था जहाँ नन्दिमहोत्सव, मालारोपण आदि धार्मिक अनुष्ठान हुए। इन राजशेखर गणि को सं० १३६४ में श्रीजिनचंद्रसूरिजी ने जावालिपुर में आचार्य पद से अलंकृत किया था। इसी गुर्वावली से यह भी ज्ञात होता है कि, सं० १३८३ मिती फाल्गुन बदि ६ को जालोर में श्री जिनकुशलसूरिजी ने मन्त्रिदलीय ठ० प्रतापसिंह के पुत्ररत्न ठ० अचलसिंह

कारित राजगृहस्थ वैभारगिरि के चतुर्विंशति जिनालय के मूलनायक योग्य श्री महावीर स्वामी आदिके अनेक पाषाण व धातुमय बिम्ब, गुरुमूर्तियां और अधिष्ठायकों की प्रतिष्ठा की थी।

पुरातत्वप्रेमी स्वर्गीय श्री पूरणचंद्रजी नाहर के शान्तिभवन में संग्रहीत सं० १४१२ की काव्यमय ३३ पंक्तियों वाली विस्तृत प्रशस्ति में लिखा है कि, बिहार निवासी महत्तियाण ठ० मण्डन के वंशज वत्सराज और देवराज ने राजगृह के विपुलाचल पर श्री पार्श्वनाथ स्वामी का ध्वजदण्ड मण्डित विशाल जिनालय निर्माण करवा कर मिती आषाढ़ कृष्णा ६ को खरतरगच्छीय श्री जिन-लब्धिसूरि पट्ट प्रभाकर श्री जिनोदयसूरि की आज्ञासे उपाध्याय श्री भुवनहित गणि के पास प्रतिष्ठा करवायी थी। यह प्रशस्ति बड़ी महत्वपूर्ण है, तत्कालीन दिल्लीश्वर पीरोजशाह के मण्डलेश्वर मलिकवय नामक मगध शासक के सेवक सहणासदुरदीन (नसिरुद्दीन ?) महाशय ने इस पुण्यकार्य में बड़ा साहाय्य किया था।

सं० १४३१ में अयोध्यास्थित श्री लोकहिताचार्य के प्रति अणहिल्लपुर पत्तन से श्री जिनोदयसूरि प्रेषित 'विज्ञप्ति महालेख' से विदित होता है कि श्री लोकहिताचार्यजी

इतःपूर्व मंत्रिदलीय वंशोद्भव ठ० चन्द्राङ्गज सुश्रावक राजदेव तथा इतर मंत्रिदलीय समुदाय के निवेदन से विहार और राजगृह में विचरे एवं वैभारगिरि व विपुलाचल स्थित जिनेश्वर भगवान को वन्दन किया। वहाँ श्रावकों ने नवीन जिन प्रासादों का निर्माण करवाया था। सूरिजी वहाँ से ब्राह्मणकुण्ड व क्षत्रियकुण्ड जाकर पुनः विहार होते हुए राजगृह आये और विपुलाचल व वैभारगिरि पर बड़े समारोह पूर्वक जिन बिंबादि की प्रतिष्ठा की।

पंद्रहवीं शताब्दी के प्रकाण्ड विद्वान् श्रीजयसागरोपाध्यायजी भी राजगृह और उद्दड विहारमें विचरे थे जिसका उल्लेख हमारे संपादित ऐतिहासिक जैन-काव्य-संग्रह के पृ० ४०० में प्रकाशित प्रशस्ति में पाया जाता है।

सं० १५०४ में श्री जिनसागरसूरिजी की आज्ञासे शुभशील गणि ने यहाँ बहुतसे जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा करवायी थी। उस समयकी प्रतिष्ठित कितनी ही प्रतिमाएँ वैभारगिरि के खण्डहर, स्वर्णगिरि, काकंदी और नालंदा (कुण्डलपुर) के मन्दिरों में अबतक विद्यमान हैं।

सं० १५२४ में श्री जिनभद्रसूरि पट्ट प्रभाकर श्री जिनचन्द्रसूरिजी की आज्ञा से उत्तराध्ययनवृत्ति के रचयिता सुप्रसिद्ध विद्वान श्री कमलसंयमोपाध्याय जी ने श्रीमाल

श्रावक छीतमल्ल के द्वारा निर्मापित वैभारगिरि शिखरस्थ धन्ना शालिभद्र मूर्ति, एकादश गणधर पादुका तथा स्वगुरु श्री जिनभद्रसूरि पादुका की प्रतिष्ठा की थी। सं० १५२५ फा० ब० ५ को जौनपुर में लिखित आवश्यक सूत्र की पुष्पिका में, जो चींचड़ गोत्रीय श्रीमाल श्रावक मल्लराज ने उपाध्यायजी के उपदेशसे ज्ञानपंचमी उद्यापनार्थ लिखवाई थी, तीर्थ क्षत्रियकुण्ड व राजगृहादि की यात्रा का उल्लेख पाया जाता है। प्रस्तुत प्रति श्रीयुत् फूलचंदजी झाबक फलौदी निवासी के संग्रह में वर्तमान है। उसी संवत् में आषाढ़ वदि ६ को लिखी हुई दशवैकालिक टीका की ११६ पत्रवाली प्रति की प्रशस्ति (जो उपर्युक्त प्रशस्ति से मिलती जुलती है) में भी उल्लेख है। यह प्रति जसलमेर के बड़े उपाश्रय में उ० वृद्धिचंद्रजी के संग्रह में सुरक्षित है।

सुप्रसिद्ध तीर्थमालाओं में राजगृह का नाम खूब गौरव के साथ स्मरण किया गया है। नित्य प्रतिक्रमण में बोले जाने वाले "सकलतीर्थ-स्तोत्र में तथा श्रावक कवि ऋषभदास कृत चैत्यवन्दनमें "वैभारगिरि उपरे वीर जिनेसर राय" पद जैनों में खूब प्रसिद्ध है। सिद्धसेनसूरि ने सकलतीर्थ स्तोत्र में—"रायगिह चंप पावा अउज्झ कंपिल ट्ठण पुरेसु" तथा संगमसूरि कृत तीर्थमाला में "वैभारगिरिरपापा जयंति

पुण्यानि तीर्थानि" एवं मुनिप्रभसूरि कृत अष्टोत्तरी तीर्थमाला में— माहण खत्तियकुण्डह गामिहि राजग्रहि पावापुरि ठामहि— तथा बाहत्तरि जिनस्तवन में "महिलपुर मल्लि नमि रायगिह सुव्वयं" पाठोंसे वंदना की गयी है। भिन्न २ समय में जैनाचार्यों ने स्वयं विचरते हुए अथवा संघ के साथ जब वे तीर्थयात्रा करते तो उस भ्रमण वृत्तान्त को पद्य बद्ध कर दिया करते थे। ऐसी बहु संख्यक तीर्थमालाएं उपलब्ध हैं, जिन में तत्कालीन तीर्थों के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार की तीर्थमालाओं में सर्व प्राचीन और अप्रकाशित श्री जिनवर्द्धनसूरि कृत पूर्वदेश चैत्य परिपाटी में विशद वर्णन पाया जाता है जिससे *पन्द्रहवीं शताब्दी के राजगृह पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।*

ईया हरखिउ ए हियड़ा रंगि टगमग नयण निहालतउ ए
ईया चालतउ ए चमकिय चित्ति पाजइ पहुंचइ माल्हतउ ए
ईया पेखउ ए मण आणंदि वेभारह गिरि सिहरि सामि
ईया जिणवरु ए नील सरीरु सिरि मुणिसुव्वय पवर नमि॥१४
ईया निम्मविउं ए अप्पणउ जम्म सहलउ सामिय देखि तुह
ईया भवियण ए लोयण ताह पुन्निमाचंद सुविशाल मुह
ईयाइणि खणि ए दूरि पलाहि तिहुयण बंधण सयल दुह
ईया पाँचउँ ए तयणु सिरिनेमि जिणवर सुन्दर सयल सुह॥१५॥

ईया विरचउ ए विमल नीरेण मण उल्लासहि वर न्हवणु
ईया अहकरउं ए जगगुरु अंगि रंगि विलेपणु हउं तयणु
ईया पूजउ ए सुरहि कुसुमेहि वउलसिरि पमुहेहि तणु
ईया गाउं ए महुर सरेण देह रोमंचिय नम्ह गुण ।।१६।।
ईया नाचउ ए फरफर पाय काय विलासिहि जिण भुवणि
ईया उल्हवउं ए भव दुह दाह भावण भावउं नियय मणि
ईया इणि परि ए अवर भवणेसु बिंब जुहारउ मनि रलिय
ईया पेखउ ए गणधर थुंभ दुख न पामउ जिम वलिय ।।१७।।
ईया मह मणि ए लागिय खंति जाएवउ हिव विपुलगिरे
ईया भागिय ए भव भय भंति पास जिणेसर पेखि करे
ईया अन्नवि ए जिणवर तुंग चंग निहालउ तहि नमउ ए
जिणवर ए बिंब सुरंग सिद्धि रमणि सउं जिम रमउ ए।।१८।।
ईया निरखइ ए नर्याणरि कुंड मणि अच्छेरउ ऊपजइ ए
जहि वहए नीर पयंड अग्गि विणु ऊन्हउ नीपजइ ए ।।
गढ मढ ए मंदिर सार वाड़िय वन रलियामणा ए
नीपना ए जत्थ अपार समवसरण जिनवर तणा ए ।।१९।।
ईय धन्ना ए सालिहभद्द जहि ठाणहि काउसग्गि रह्या ए
भेटइ ए जे तहि वीर ते नहु भव परिभव सहइ ए ।
रस तणं ए कूप रसाल हथिशाला सेणिय तणिय
पेखविए वीर पोसाल पूरिय मन इच्छा घणिय ।।२०।।

उपर्युक्त अवतरण से विदित होता है कि श्रीजिनवर्द्धनसूरिजी ने वैभारगिरि पर श्रीमुनिसुव्रत प्रभु, नेमिनाथ जिनेश्वर तथा दूसरे जिनालयों के अतिरिक्त गणधर स्तूप की वन्दना की थी। विपुलाचल पर पार्श्वनाथ प्रभु तथा दूसरे भी कितने ही उत्तुंग जिनप्रासाद थे। धन्ना शालिभद्र कायोत्सर्ग स्थानके अतिरिक्त आश्चर्यजनक उष्ण जल कुण्ड तथा गढ़, मढ़, मन्दिर, वन, वाटिका, रसकूप, श्रेणिक की हस्तिशाला तथा वीर-पोशाल का भी नामोल्लेख किया है।

सं० १५६५ में कवि हंससोम कृत तीर्थमालामें १४ गरम जल के कुण्ड, वैभारगिरि पर मुनिसुव्रत प्रभृति २४ प्रासादोंमें ७०० जिन बिंब, अर्द्धकोश आगे गणधर मन्दिर, धन्ना *शालिभद्र, काउसग्गिया और रोहणिया* वीर की गुफा का उल्लेख कर विपुलगिरि पर पार्श्वनाथ प्रमुख ६ मन्दिर तथा उदयगिरि में चौमुख तथा रत्नगिरि, स्वर्णगिरि, श्रेणिक, शालिभद्र और धन्ना के आवास तथा गहणों का कूप (निर्माल्यकूप) तथा निकटवर्त्ती वीर पोशाल का भी नामोल्लेख किया है।

सं० १६५७ में आगरा से सुप्रसिद्ध संघपति कुंअरपाल, सोनपाल ने संघ निकाला जिसका महत्वपूर्ण वर्णन कवि जसकीर्त्ति (अंचलगच्छीय) ने किया है इससे जाना जाता

है कि उपर्युक्त संघ सम्मेतशिखर जी से १२ योजन चल कर ७ वें दिन राजगृह पहुंचा। यहाँ श्रेणिक नरेश का गढ़ और गरमपानी के कुण्ड देखे। पाँचों पहाड़ोंमें १ वैभार २ विपुल ३ उदय ४ रत्न ५ स्वर्णगिरि क्रम लिखा है। प्रथम वैभारगिरि पर मुनिसुव्रत प्रभु का ५२ जिनालय, पद्मप्रभु, नेमिनाथ चन्द्रप्रभ, पार्श्व, आदिनाथ अजितनाथ, अभिनन्दन, महावीर, विमलनाथ, सुमतिनाथ और सुपार्श्वनाथ तथा दूसरे मन्दिर में मुनिसुव्रत स्वामी की वन्दना की। वीर विहार से दक्षिण ११ गणधर पादुकाओं की पूजा की। भूमिग्रहों में कई जिनेश्वर काउसग्गिए तथा पद्मासन ध्यानस्थ जिनबिम्बों के दर्शन किये। ईश्वर देहरा (शिवालय) के सामने धन्ना शालिभद्र काउसग्गियों के दर्शन कर के गिरिराज से उतरे, मिश्री के पानी से सर्व संघ को संतुष्ट किया। हर्षित चित से गुनशिल चैत्य और शालिभद्र (निर्माल्य) कूप व रोहिणियाकी गुफा देखी। विपुलगिरि पर एक जिनालय में २४ प्रतिमाएं, तथा चार प्रासादोंमें अजितनाथ, पार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ और पद्मप्रभु स्वामी की पूजा की। जम्बूस्वामी, मेघकुमार, धन्ना, स्कंधक मुनि आदि के पादुकाओं के दर्शन कर उदयगिरि पर चौमुख जिनालय रत्नगिरि पर ऋषभजिन प्रासाद के दर्शन किये। दूसरे दिन सोवनगिरि

के ६ जिनालयों की यात्रा की। राजगृह नगरमें ३ जिनालयों के दर्शन पूजन किये।

सं० १६६४ में जयविजय कृत तीर्थमाला में गरम पानी के १४ कुण्ड, वैभारगिरि पर वीर जिनालय, ११ गणधर पादुका-मंदिर, २५ जिनालय, धन्ना शालिभद्र मन्दिर, रोहणिया चोर गुफा (५२जिनालय के पृष्ट भागमें कालंबरि वृक्ष के नीचे) प्रभृति देखकर विपुलगिरि पर ६ मन्दिर, उदयगिरि मे चौमुख जिनालय, स्वर्णगिरि में पांच, रत्न-गिरि पर दो प्रासादों का उल्लेख किया है। वीर-पोशाल, निर्माल्य कूप तथा गांव में ऋषभ जिनालय का अस्तित्त्व लिखा है। वस्तु छन्द में वैभारगिरि पर १५० बिब, विपुल-गिरि पर ६, उदयगिरि में ७, सोवनगिरि में २०, रत्नगिरि पर ५ जिन बिम्बों की संख्या दी है।

१७ वीं शती में विजयदेवसूरि के शासन में कवि विजयसागर ने राजगृह का जो वर्णन लिखा है। उससे विदित होता है कि वैभारगिरि-राजगृह पर पूर्वकाल में ३६००० घरों की बस्ती थी (१) पाँचों पहाड़ों पर १५० मंदिर ३०३ जिन बिम्ब, ११ गणधर चरण, धन्ना शालि-भद्रकाउसगिए लिखे हैं। निर्माल्य कूप के स्थान को हांसापुर नगर लिखा है और कूएं के ऊपर गुम्मट की

विद्यमानता थी। वीर पोशाल एक ही पत्थर में बनी हुई ४६ हाथ लम्बी है तथा १४ कुण्ड गरम जल के हैं।

शीलविजय जी ने सं० १७४६ में तीर्थमाला निर्मित की। उस में ५ पहाड़ और तदुपरि जिनालय, शालिभद्र के घर के पास निर्माल्य कूप, नन्द मणियार की वापी, वैभारगिरि पर रोहणिया की गुफा तथा गढ़ में श्रेणिक राजाके आवास का उल्लेख किया है।

तपाच्छीय कवि सौभाग्यविजय ने सं० १७५० मे जो तीर्थमाला बनाई उस में वैभारगिरि पर ५२, विपुलगिरि पर ८, रत्नगिरि पर ३, स्वर्णगिरि पर १६, उदयगिरि पर १ चौमुख, गाँव-मन्दिर १ इस प्रकार इस तीर्थके ८१ जिनालयों की संख्या लिखी है। वैभारगिरि पर ११ गणधर धन्ना शालिभद्र इत्यादि का वर्णन करते हुए शालिभद्र के आवास स्थानमें निर्माल्य कूप, जिसपर गोमट किया हुआ है—स्नान करने से विकार को नष्ट करने वाले सूर्यकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड आदि गरम पानी के कुण्डों तथा वैभारगिरि की दक्षिण तलहट्टिका में स्वर्णभंडार—जिसे लोग वीर प्रभु की पौषध-शाला कहते है—का उल्लेख किया है, वे यह भी लिखते है कि त्रिखण्डाधिपति जरासन्ध राजा का कोट आज भी अच्छी स्थिति में विद्यमान है।

उन्नीसवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान एवं त्यागी संवेगी उपाध्याय क्षमाकल्याण गणि इस देश में विचरे थे उनके गुरु श्री अमृतधर्मजी ने विपुलगिरि पर अतिमुक्तक मुनि की प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। क्षमाकल्याणजी कृत तीर्थावली स्तोत्र में लिखा है :—

देशे प्रधाने मगधामिधाने
भवत्पुरं राजगृहाभिधानं
तत्पार्श्व देशे वर पंच शैलों
समीक्ष्य चित्ते मुदितोस्मि सम्यक् ॥१६॥
आद्यस्तु वैभारगिरि प्रसिद्धो,
द्वितीयक: श्री विपुलाचलाख्य
रत्नाचल स्वर्णगिरौ ततौद्वौ
ततस्ततः श्री रुदयाभिधोद्रि ॥१७॥
नगेषु चैत्येषु पुनर्नगर्या
श्री वीरानाथ प्रमुखान् जिनेशान्
श्री गौतमादीन् गणधारिणश्च
नत्वान्य साधुन भवं सुपुण्यः ॥१८॥

खरतर गच्छ पट्टावली से विदित होता है कि श्री जिन चंद्रसूरिजी (सं०१८३४-३५-५६) ने पूर्व देश के समस्त तीर्थों की यात्रा करते हुए राजगृह की यात्रा भी की थी

और तत्पश्चात् राजा वच्छराज नाहटा के आग्रह से लखनऊ में ३ चातुर्मास किये।

दानवीर द्वितीय जगडूसाह के पिता लालन गोत्रीय ओसवाल वर्द्धमानशाह व उनके भ्राता पद्मसिंह धर्मिष्ठ व्यक्ति हुए हैं। अञ्चलगच्छीय अमरसागरसूरि ने सं० १६६१ में 'वर्द्धमान पद्मसिंह श्रेष्ठी चरित्रम्' निर्माण किया जिसके ८ व सर्ग में लिखा है कि वे भ्राता सम्मेतशिखर तीर्थाधिराज की यात्रार्थ गये वहाँ के मार्ग को दुर्गम देखकर ढाई लाख मुद्राओंके व्ययसे समेतशिखर पर पैड़ियाँ बंधवाई उसके बाद वैभारगिरि, चंपा, काकंदी, पावा, राजगृह बनारस, हस्तिनापुर आदि तीर्थों की यात्रा करने में प्रचुर द्रव्य व्यय किया।

हिन्दूधर्म शास्त्रों में वायुपुराणान्तर्गत 'राजगृह महात्म्य' राजगृह के हिन्दू तीर्थों पर अच्छा प्रकाश डालता है। उसमें लिखा है कि यहाँ के पाँचों पहाड़ों के मध्य में सरस्वती नदी, पश्चिम में मार्कण्डेय क्षेत्र और उत्तर में माधोजी का स्थान है। यह वर्त्तमान का "वेणीमाधो" स्थान संभवित है। सरस्वती के उत्तर में शालग्राम तीर्थ है उसके पूर्व में विभांडक, उत्तर में जंभमर्दक पश्चिम में कर्पदकेश्वर और दक्षिण में वृतमोक्षण और मध्य में मध्येश्वर नामके शिवलिङ्ग है, वर्त्तमान में पूर्व और मध्यके अतिरिक्त स्थान भग्नावशेष रहगये। शालग्राम के दक्षिण में पाण्डु पुत्रोंका स्थान है जिसके दक्षिण में वानर तीर्थ का उल्लेख है। सरस्वती की पूर्व दिशा में गणेश, चन्द्र, सूर्य और शान्ति तीर्थों का उल्लेख है जो वर्त्तमान के सूर्यकुण्डादि के सूचक हैं।

यहाँ सबसे अधिक प्रसिद्ध ब्रह्मकुण्ड है। इसके नैऋतकोण में हंस तीर्थ, उत्तर में यक्षिणि स्थान और पूर्व में पंचनाद तीर्थ का उल्लेख है। ब्रह्मकुण्ड के पास नदी को प्राची सरस्वती कहते हैं, दोनों ओर बंधे पक्के घाटों पर यात्री लोग पहले स्नान करते हैं। सरस्वती कुण्डके पास मार्कण्डेय क्षेत्र है। कुण्डों में तथा ऊपर जानेके लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। यहां ब्रह्मकुण्ड, मार्कण्डेय कुण्ड, गंगा-यमुना कुण्ड, अनन्त नारायण

कुण्ड, सप्तर्षि धारा और काशीधारा नामक सात कुण्डों में ब्रह्मकुण्ड प्रधान है। गंगा-यमुना कुण्ड में दो धाराओं द्वारा पानी आता है, सभी कुण्ड गरम पानी के है। उत्तर में सप्तर्षि धारा और दक्षिण में एक वापी है। दीवाल में अत्रि, भरद्वाज, काश्यप, गौतम, विश्वामित्र, वशिष्ठ और जमदग्नि ऋषियों के नाम से जल के निर्झर हैं जो सात तीर्थ कहलाते हैं। वापी के ऊपरवर्त्ती मन्दिर में सप्तर्षियों की मूर्त्तियां स्थापित हैं। ब्रह्मकुण्ड के पास शिवालय है। सप्तर्षि धारा के उत्तर में लक्ष्मीनारायण, शिवपरिवार, बलराम, हनुमान प्रभृति के ५ मंदिर हैं। सप्तर्षिधारा के पास ब्रह्मकुण्ड है जिस का पानी सबसे अधिक उष्ण है, कुण्ड में ब्रह्मा, लक्ष्मी और गणपति की मूर्तियां है। पूर्व दिशस्थित लघु मन्दिर में वाराह की मूर्ति है। पहाड़ के पास संध्या देवी का मन्दिर केदार कुण्ड और तत्पार्श्ववर्त्ती मन्दिर में विष्णु (कृष्ण) की पादुकाएँ विराजमान है।

विपुलाचल की तलहट्टी में सीता कुण्ड है जिसके उत्तर हाटकेश्वर का मन्दिर है। उत्तर की ओर सूयकुण्ड, चन्द्रकुण्ड, गणेशकुण्ड, और रामकुण्ड है। राम कुण्ड की धारा एक गरम और दूसरी ठण्डी है अवशेष सभी गरम पानी के कुण्ड हैं। जिस ऋष्य-शृंग तीर्थ

का राजगृह महात्म्य में उल्लेख है, आजकल इस शृंगी कुण्ड को मकदुम कुण्ड कहते हैं और मुसलमानों के कब्जे में है। इसमें गरम और ठण्डे पानी का झरणा है यहां मकदुम साहब नामक फकीर रहते थे।

सरस्वती कुण्ड से आध मील उत्तर जाने पर वैतरणी नदी आती है यहां उभय पक्ष में घाट बन्धे हैं अत: हिन्दू लोग श्राद्ध, गौदानादि किया करते हैं। नदी तट पर माधवजी का मन्दिर है। वैतरणी से ४०० कदम जाने पर सरस्वती को शालिग्राम कुण्ड कहते हैं, पक्के घाटों पर यात्री लोग स्नान करते हैं। धर्मेश्वर महादेव के मन्दिर के पास भरत कूप है जिस में यात्रियों के स्नानार्थ उतरने के निमित्त पैड़ियां बनी हुई हैं। सरस्वती कुण्ड से दक्षिण सरस्वती नदी में वानरी कुण्ड है जिसे राजगृह महात्म्य में बानर तीर्थ कहा है। आगे जाने पर गोदावरी नामक छोटी नदी आकर सरस्वती से मिलती है इस संगम स्थान के पास पर्वतोपरि ज्वालादेवी का मन्दिर है। सरस्वती कुण्ड से ६ मील की दूरी पर वैकुण्ठ नदी और वैकुण्ठ तीर्थ है कुछ दूर कण्ठेश्वर महादेव का स्थान है। ऋष्यश्रृङ्ग के उत्तर निजरेश्वर शिवजी स्थित है, यहां के केदारेश स्थान में स्नान कर शेषनाग पूजा का महात्म्य में विशेष फल लिखा है महा-

भारत में लिखा है कि राजगृह तीर्थ स्पर्श करने से ब्रह्महत्या छूटती है व मोक्ष मिलता है।

महाभारत के सभापर्व अध्याय २१ श्लोक ६ में "मणिनाग" स्थान का उल्लेख है, यह स्थान मणियार मठ अनुमान किया जाता है। मणिनाग से गौतम वन जाकर अहिल्या कुण्ड में स्नान का फल लिखा है, मणिनाग से पूर्व दक्षिण में तपोवन पश्चिम में कौशिक आश्रम है। तपोवन राजगृह से १०-१२ मील पश्चिम में है यहां प्राचीन मूर्त्तियों के अवशेषादि पुरातत्व की सामग्री अब भी विद्यमान है।

बाणगंगा से पूर्व एक कोश पर कण्व तीर्थ है महात्म्य में यहाँ अग्नि-तीर्थ का उल्लेख है जहाँ पर त्रिकोटीश्वर महादेव हैं। अग्नि तीर्थ के पश्चिम वृष्यगंगा और १०० धनुष पर शालग्राम तीर्थ है। इनके अतिरिक्त राजगृह में माया देवी का और नगर के उत्तर दिग्वर्ती कोना देवी का स्थान है। यहाँ पर हंस तीर्थ का उल्लेख है तथा चण्डकौशिक कुण्ड व विष्णु कुण्ड के मध्य में देवदत्त ऋषि का स्थान है राजगृह के उत्तर में अश्विनीकुमार का स्थान है। इस प्रकार पुराने हिन्दू शास्त्रों में बहुत से पवित्र स्थान उल्लिखित है वर्त्तमान में ब्रह्मकुण्ड, सूर्यकुण्डादि पर जो महादेवादि के देवालय विद्यमान हैं वे १५०-२०० वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं

परन्तु छोटे २ मन्दिर जैसे दक्षिणो देवी, सन्ध्या देवी, माया देवी, जरा देवी, विष्णु पादुका, गणेश मन्दिर, कामक्षा देवी, वाराहावतार, हाटकेश्वर ठाकुर स्थान आदि प्राचीन हैं। कइयों में पालकालीन मूर्तियां भी है महादेवजी का चतुर्मुख लिंग बड़ा ही सुन्दर और दर्शनीय है। वैभारगिरि स्थित सिद्धनाथ-सोमनाथ प्राचीन प्रतीत होता है।

राजगृह महात्म्य में यहाँ के वसु राजा के अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करने का उल्लेख है। यज्ञ के अनन्तर राजाने आगन्तुक ब्राह्मणों को द्रव्य एवं भूमिदान से पुरस्कृत किया था जिन में आश्वलायन शाखा के अत्रि आदि १५ गोत्रों के ब्राह्मण गिरिव्रज में रहे। कहाजाता है कि अत्रस्थित पण्डे उन्हीं के वंशज हैं।

जन श्रुति है कि यहा पूर्वकाल में ५२ कुण्ड थे जिन मे से अब २२ वर्त्तमान हैं जिनके नाम—१ सरस्वती कुण्ड २ प्राचीष्यातरणी कुण्ड ३ शालिग्राम कुण्ड ४ भूत कुण्ड ५ राम कुण्ड ६ गणेश कुण्ड ७ सोम कुण्ड ८ सीता कुण्ड ९ व्यास कुण्ड १० माकण्डेय कुण्ड ११ गोदावरी कुण्ड १२ गंगा-यमुना कुण्ड १३ अनंतमुनि कुण्ड १४ किशोथता कुण्ड १५ समधारा कुण्ड १६ ब्रह्म कुण्ड इत्यादि।

श्रीयुत पूरणचंद्रजी नाहर ने ना० प्र० प० के वष ८

अं० ४ में "राजगृह के दो हिन्दी के लेख" शीर्षक से दो लेख प्रकाशित किये हैं जिन में सप्तधारा कुण्ड का महाराजा ताजअलीखाँ बहादुर के समय का व दूसरा सूर्यकुंड के पश्चिमी दीवार का बकसंडा के बाबू सीताराम का सं० १६०४ का है दोनों अभिलेख हिन्दी कविता में है इन्हीं सीताराम बाबू ने बेनीमाधव मन्दिर के नीचे सरस्वती का पक्का घाट बंधाया जिसका लेख सं० १६२५ का नाहर जी की प्रबन्धावली में छपा है।

अत्रस्थित धर्मशालाओं में सर्व प्राचीन जैन श्वेताम्बर धर्मशाला है अभी दिगम्बरों ने भी अपने २ मन्दिर व नव्य धर्मशालादि बनवा लिये हैं। बरमी लोगों ने भी अपना एक मन्दिर और यात्रियों के ठहरने के हेतु मकान बनाया है। जिस मे उनके एक फुंगी बराबर यहाँ रहते हैं। इसी मन्दिर के पीछे बगीचे में राजगृही में प्राप्त कतिपय मूर्तियां संग्रहित की हुई है जिन में करण्डवेणु वनोद्यान से प्राप्त खड़ी हुई विशाल बौद्ध प्रतिमा भी है जिस पर बौद्धों का "ये धम्मा हेतु पभवा" श्लोक खुदा हुआ है। यह प्रतिमा हाल ही में सरकार ने बौद्ध मन्दिर को दी है। विपुलगिरि के निकट जापानी मन्दिर भी नूतन निर्मित हुआ है। सनातन धर्मशाला कलकत्ते की श्रीमती आनन्दी बाई ने बनवायी थी

जो अभी जटियों के तत्त्वावधान में, जीर्ण स्थिति में खड़ी है। गांव के अन्दर सनातन धर्मका "संगत" नाम से प्रसिद्ध विशाल मठ है जिस के मठाधिपति सन्यासी वहाँ रहते हैं, लोगों के ठहरने की कोठरियां भी बनी हुई हैं। सिख लोगों का भी यहां स्थान विद्यमान है। राजगृही में कार्त्तिक पूनम, महाशिवरात्रि, वैशाखी अमावाश्या, सोमवार, ग्रहण इत्यादि स्नान के अवसर पर और विशेष कर अधिक मास का विस्तृत मेला लगता है। सरस्वती कुण्ड से १ मील तक दुकानें लगती हैं।

यह कहा जा चुका है कि मुनिसुव्रत स्वामी के चार कल्याणक होने के कारण तथा अनेक महापुरुषों की लीलाभूमि तथा सिद्धि-गमन स्थान होने के कारण यह जैन धर्म के श्वेताम्बर व दिगम्बर उभय सम्प्रदाय मान्य प्राचीन तीर्थ है। पूर्वकाल में यहाँ दिगम्बर सम्प्रदाय के कोई अलग मन्दिर नहीं थे श्वे० मन्दिरों में ही प्रायः उनकी अलग वेदी पर प्रतिमायें विराजमान रहती थीं जहां उभय सम्प्रदाय के यात्रीगण आकर सेवा भक्ति कर जाते थे। अठारहवीं शती के मध्य में कवि सौभाग्यविजय ने राजगृह व पहाड़ों के मन्दिरों की संख्या ८१ लिखी है, इस समय पहाड़ों पर कुल १६ मन्दिर व कुछ मन्दिरों के खण्डहर रहे

हैं कुछ मन्दिर जीर्ण होकर नष्ट हो गए बाकी सं० १८५७ के इतिहास प्रसिद्ध सिपाही विद्रोह के समय बागी लोगों ने पांचों पहाड़ों को सुरक्षित समझ कर अपना अड्डा जमा लिया था। उन लोगों ने पहाड़ के मन्दिरों की मूर्त्तियों व चरणों को इतस्तत: कर दिये इसी कारण आज भी यत्र तत्र मूर्त्तिखण्डादि अवशेष प्राप्त हो जाते हैं।

राजगृह तीर्थ की व्यवस्था प्राचीन काल से बिहार निवासी महत्तियाण संघ व ओसवालों के हाथ में थी। सं० १९६३ से पूर्व बिहार निवासी मुन्नीलालजी सुचन्ती के हाथ में इस तीर्थ की असन्तोषजनक व्यवस्था थी। संघ की असावधानी से यहां के पण्डों ने समस्त मन्दिरों, धर्मशाला और भंडार की जमीन पर कब्जा जमा लिया था। कलकत्ता के सुप्रसिद्ध जौहरी राय बद्रीदास बहादुर के सुपुत्र स्वर्गीय रायकुमारसिंहजी मुकीम ने सं० १९६२ में इस तीर्थ का प्रबन्ध भार ग्रहण कर समस्त स्थानों पर अपना कब्जा करके तीर्थ की अच्छी उन्नति की। अभी उनके सुपुत्र बाबू फतेकुमारसिंहजी इस तीर्थ के सम्मान्य मैनेजर हैं। पुरातत्त्व प्रेमी श्रीयुत मणिलालजी श्रीश्रीमालके लघु भ्राता श्रीयुत् कन्हैयालालजी श्रीश्रीमाल तीर्थ की अच्छी सेवा कर रहे हैं। इनके पहले धनपतसिंहजी मालकस मुनीम थे।

श्वेताम्बर व दिगम्बर समाज ने ३ वर्ष मुकदमा लड़ने के बाद ता० २१ जनवरी सन् १६२७ को परस्पर समझौता किया जिससे आपसी कलह का सदा के लिए अन्त हो गया। पहले पहाड़ पर अइमत्ता मुनि देहरी, आदिनाथ मन्दिर व श्री मुनिसुव्रतनाथजी के कल्याणक खण्डहर के अतिरिक्त सभी दिगम्बरों को दे दिये। दूसरे तीसरे और चौथे पहाड़ में दिगम्बरों को छोटी गुमटियें दी गयी थी प्राचीन विशाल मन्दिर व कल्याणक स्थान श्वेताम्बरों के अधिकार में रहे। पांचवें पहाड़ के ७ मन्दिरों में १ छोटा मन्दिर दिगम्बरों को दिया गया अवशेष सभी श्वेताम्बर समाज के अधिकार में रहे। अभी दिगम्बरों ने अपने नये मन्दिर व कहीं २ शिखर इत्यादि बनवा कर सुव्यवस्थित कर लिये हैं। गांव के मन्दिर, धर्मशाला व भंडार की परती जमीन में से दिगम्बरों को कुछ भी नहीं दिया गया और समझौते के अनुसार उन्होंने अपनी मूर्त्तियों को हटा कर २ नये मन्दिर व धर्मशालाएं बनवा ली हैं।

कवि शीलविजय ने "शालिभद्र घर पासिकूओ. नंद मणियार नी वाविज जूओ" लिख कर अपने समय में "नंद मणियार की वापी की विद्यमानता स्वीकार की है परन्तु वर्त्तमान समय में इसका कोई पता नहीं। ज्ञाता सूत्र में

नंद मणियार का वृतान्त आया है, यहां उसका परिचय देना अप्रासंगिक न होगा—राजगृह में नंद मणियार (मणिकार- जौहरी नामक श्रेष्ठी रहता था वह वीर प्रभु के उपदेश से श्रावक हुआ। उसने महाराजा श्रेणिक-बिम्बिसार की आज्ञा से नगर के बाहर आरोग्यशालादि शोभित वनखण्ड चतुष्क परिवृत नन्दा पुष्करिणी निर्माण करवायी। उसी में आरक्त अध्यवसायों द्वारा मर कर वहां मैंढक हुआ। भगवान के राजगृह पधारने पर वह मैंढक प्रभु दर्शनार्थ जा रहा था, मार्ग में महाराजा श्रेणिक की सवारी मिली जो प्रभु वन्दनार्थ जा रही थी। राजा के घोड़े के पैरों तले कुचल कर मैंढक की मृत्यु हो गयी। और प्रभु के ध्यान से सौधम देवलोक स्थित दुर्दु रावतंशक विमान में देव हुआ। वहा से च्यव कर नंद मणियार का जीव महाविदेह क्षेत्र से मोक्ष जावेगा।

पूर्व कवियों के किये हुए विवेचन में हम देख चुके हैं कि पूर्वकाल में यात्रा का मार्ग—पहाड़ों का यात्रा क्रम आजकल की भांति नहीं था जिसे जिस क्रम में सुविधा मालूम हुई उसी क्रम से यात्रा कर ली आज भी संलग्न क्रम या पृथक् पृथक् यात्रा करने के भिन्न भिन्न मार्ग हैं। पुराने सभी वर्णन वैभारगिरि को प्रथम पहाड़ मानते हैं पर

आजकल के क्रम के अनुसार उन पहाड़ों का परिचय दिया जाता है।

१ विपुलगिरि

जैन समाज इस पवित्र गिरिराज को प्राचीन काल से तीर्थ रूप में मानता आया है। दिगम्बर परम्परा भगवान महावीर के यहां समौशरण होने और सूत्रार्थ देशना देने के पक्ष में है। श्वे० परम्परा में भगवान के समौशरण अधिकांश वैभारगिरि और गुणसिल चैत्य में बतलाये हैं। प्राचीनकाल से इस गिरिराज पर भव्य जिनालय विद्यमान थे। श्वे० समाज द्वारा १५ वीं शती के पूर्वार्द्ध में दो जिनालय निर्माण और प्रतिष्ठा होनेका उल्लेख पूर्व किया जा चुका है। अभी भी अति विशाल पक्का स्थान इस मन्दिर की स्मृति को जागृत करता है जो स्तूप से आगे जाने पर दृष्टिगोचर होता है। सं० १४१२ की महत्त्वपूर्ण पार्श्वनाथ मन्दिर प्रशस्ति, जिसे स्वर्गीय बाबू पूरणचंद्रजी नाहर प्रकाश में लाये थे, यहीं के विशाल जिनालय को सुशोभित करती थी। दूसरी प्रतिष्ठा सं० १४३१ से पूर्व हुई थी जिसका विवरण 'विज्ञप्ति महालेख' में आया है। इतः पूर्व और पीछे भी यहां मन्दिर निर्मित

हुए थे। कवि हंससोम यहाँ ६ मन्दिर, जयकीर्ति यहां ५ मन्दिर जयविजय यहां ६ मन्दिर और सौभाग्यविजय यहां ८ मन्दिरों का वर्णन करते हैं, इस समय यहां ६ मंदिर विद्यमान हैं। इस गिरिराज का मार्ग (सड़क) अच्छा बना हुआ है। लोढों के संघ के समय १७ वीं शती में यहाँ जम्बू स्वामी, मेघकुमार, धन्ना, स्कंधक आदि की पादुकाएं थीं, जो अब नहीं है। अभी सर्व प्रथम अइमत्ता मुनि (अतिमुक्तककुमार—जिन्होंने अल्पवय में दीक्षा लेकर निर्वाण प्राप्त किया) की देहरी आती है। दूसरे मन्दिर में महावीर प्रभु के चरण, तीसरे में चन्द्रप्रभु के चरण, चौथे में श्री महावीर प्रतिमा, पांचवें में मुनिसुव्रत स्वामी, और छट्ठे उत्तराभिमुख जिनालयमें मुनिसुव्रत स्वामी की प्रतिमा, आदिनाथ स्वामी और महावीर स्वामी के चरण विराजमान है प्रभु प्रतिमा राय धनपतसिंहजी निर्मापित तथा महावीर स्वामी के चरण सं० १९०० के व ऋषभदेव प्रभु के चरण सं० १८१६ (वैभारगिरि जीर्णोद्धार के समय स्थापित) के प्रतिष्ठित विराजमान है। प्रथम और अन्तिम दो मन्दिर श्वेताम्बर अवशिष्ट चारों मन्दिर दिगम्बर भाइयों के अधिकार में हैं। श्री महावीर स्वामी से बाल्यकाल में दीक्षित हो इस पहाड़ पर मोक्ष

जाने वाले अतिमुक्तक मुनि की मूर्ति सं० १८४८ में खरतर गच्छीय वा० अमृतधर्म गणि प्रतिष्ठित है। पाषाण सुदृढ़ न होने के कारण पपड़ियां उतर गयी है जिससे मुनिराज की आकृति विशेष स्पष्ट नहीं रही, लेख खूब स्पष्ट और सुवाच्य है। मुनिवर के दाहिने हाथ में मुखवस्त्रिका व बायें हाथ में रजोहरण व चोलपट्टे का वस्त्रचिन्ह स्पष्ट है। पूर्वकाल में हुई प्रतिष्ठाओं का ऊपर उल्लेख किया है उसके बाद सं० १७०७ में बिहार निवासी खरतर गच्छीय महतियाण ज्ञातीय चोपड़ा तुलसीदास के पुत्र संग्राम व गोवर्द्धन ने राजगृह-विपुलगिरि पर वा० कल्याणकीर्त्युप-देश से जीर्णोद्धार कराया। इस आशय का लेख नवग्रह दशदिग्पाल मूर्त्ति- पट्टिका पर खुदा हुआ है जो दिगम्बराधि-कृत जिनालय की दीवाल पर लगा हुआ है। इस पहाड़ के नीचे सूर्यकुण्ड नामक उष्ण जलका प्रसिद्ध कुण्ड है इस कुंड के पास दो एक प्राचीन जैनेतर मूर्त्तिएं पड़ी हुई हैं।

यहां एक प्राचीन स्तूप भग्न दशा में अद्यावधि विद्यमान है, प्रमाणाभाव से इसके सम्बन्ध में अधिक प्रकाश नहीं डाला जा सकता इस स्तूप का फोटो आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया के सन् १९२५-२६ की रिपोर्ट में इतर गिरिराज तथा राजगृह स्थित मूर्त्तियों के फोटो के साथ

प्रकाशित हो चुका है। सं० १६३८ में राय लछमीपतिसिंह धनपतसिंह ने अत्रस्थ जिनालयों का जीर्णोद्धार कराया था जिनके लेख नाहर जी के लेखाङ्क २४७-२४८ में मुद्रित है। विपुलगिरि के मन्दिरों का दर्शन कर द्वितीय पहाड़ रत्नगिरि जाने का मार्ग श्री मुनिसुव्रतप्रभु के जिनालय के पृष्ठ भाग से है।

२ रत्नगिरि

द्वितीय पहाड़ रत्नगिरि पर कुंवरपाल सोनपाल लोढा के संघ के समय सतरहवीं शती में ऋषभ जिनालय की विद्यमानता थी कवि जयविजय सं० १६६४ में प्रासाद द्वय का उल्लेख करते हैं। सौभाग्यविजय जी सं० १७५० में ३ जिनालय लिखते हैं। अब भी वहाँ ३ जिनालय विद्यमान है जिन में २ दिगम्बरों के एवं १ श्वेताम्बरों के अधिकार में है। दिगम्बराधिकृत एक मंदिर में मुनिसुव्रत, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ प्रभुकी चरणपादुकाएं और द्वितीय मंदिर में पुष्पदन्त और शीतलनाथ प्रभु की खंडित प्रतिमाएं और एक अस्पष्ट शिलालेख के अस्तित्व का दिगम्बर जैन डिरेक्टरी में उल्लेख है। श्वेताम्बर जिनालय उत्तराभिमुख श्री शान्तिनाथ स्वामी का है जिस में अभी नेमिनाथ,

शान्तिनाथ, वासुपूज्य और पार्श्वनाथ स्वामी की चरणपादुकाएं हैं ये चारों चरण सं० १८१६ माघ शु० ६ को हुगली निवासी गांधी बुलाकीदास के पुत्र साह माणकचंद के जीर्णोद्धार के समय प्रतिष्ठापित है इन सब पर "रत्नगिरि" का नामोल्लेख है। ये लेख बाबू पूरणचंद जी नाहर ने 'जैन लेख संग्रह' के लेखाङ्क २४६ से २५२ तक प्रकाशित किये हैं।

यहां नव्य जीर्णोद्धारित मंदिर में प्रतिष्ठाप्यमान प्रतिमा श्री शान्तिनाथ स्वामी की है जो सं० १५०४ में महत्तियाण वशोद्भव जाटड़ शिवराज ने स्वपुत्र रिणमल धर्मदास सह निर्माण करवा कर श्री जिनसागरसूरिजी को आज्ञा से शुभशील गणि द्वारा प्रतिष्ठित करवायी थी इस समय यह प्रतिमा गांव मन्दिर के संग्रहालय में रखी हुई है। प्रस्तुत: श्याम पाषाण की प्रतिमा के सिंहासन में मध्य में मृग (लांछन) खड़ाहै दोनों और दो फूल बने हुए है। दोनों किनारों पर चैत्यवन्दना करते व्यक्ति अंकित किये हैं जो संभवत: प्रतिमा के निर्मापक होंगे। प्रभु के उभय पक्ष में चामरधारी खड़े हैं जिनके ऊपरि भाग में लेख का आरम्भ हुआ है जो ४ पंक्तियां उभय पक्ष में लिखे जाने के बाद वेदिकासन में २ पंक्तियां लिख कर संपूर्ण किया है। प्रभु मस्तकोपरि छत्र त्रय विराजमान और पृष्ट भाग में

प्रभामंडल दिखाया गया है जो अभिलेखोत्कीर्णित होने के कारण पूर्ण वृत्ताकार न हो सका। भामण्डल में पांखुड़ियां बनी हुई हैं।

३ उदयगिरि

रत्नगिरि के मन्दिर के पृष्ट भाग से उतर कर उपत्यका में लंबी सफर करने पर तृतीय पहाड़ उदयगिरि आता है। दूसरा मार्ग कुण्ड से बाणगङ्गा जाने के डिस्ट्रिक बोर्ड की सड़क से भी है। प्रस्तुत: पर्वत चढ़ने में बहुत लम्बा नहीं पर खड़ी चढ़ाई वाला और प्राकृतिक सौन्दर्य्य में अद्वितीय है। यहा के चौमुख विहार का उल्लेख सं० १५६५ से सभी तीर्थमालाओं में हुआ है। मध्य में पार्श्वनाथ स्वामी का मुख्य जिनालय और चारों तरफ जगती में चार देहरियां वर्त्तमान है। यहां ५ प्राचीनतम प्रतिमाएं एवं चार चरण पादुकाएं विराजमान है। सं० १८१६ में रत्नगिरि स्थित जिनालयों का जीर्णोद्धार कराने वाले हुगली निवासी साह माणकचन्द गान्धी ने अत्रस्थ प्रासाद का जीर्णोद्धार करवा के सं० १८२३ मिती वैशाख शुक्ला ६ के दिन श्री अभिनंदन, सुमतिनाथ और पाश्वनाथ प्रभु के चरण प्रतिष्ठापित किये

राजगृह

श्री पार्श्वनाथ प्रतिमा, उदयगिरि

थे। चौथे चरण श्री चन्द्रप्रभ स्वामी के हैं जो सं० १६३८ ज्ये० शु० १२ के प्रतिष्ठित हैं। प्रस्तुतः पादुका के लेख पर विपुलाचलके प्रथम जीर्णोद्धार साह माणकचन्द गांधी और द्वितीय जीर्णोद्धार राय लक्ष्मीपतसिंह धनपतसिंह के इसी संवत में कराने का उल्लेख है।

यहाँ के मूलनायक श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की सप्तफण मंडित श्याम पाषाण की प्रतिमा बड़ी ही भव्य, सुन्दर और राजगृह तीर्थकी अमूल्य निधि है। इस प्राकृतिक सौन्दर्यमय गिरिराज पर यात्रियों को अवश्य ही कुछ देर ध्यान में अपना समय सार्थक करना चाहिए जिस से संसार की उपाधियों से रहित इस महातीर्थगत शान्त वातारण से आध्यात्म रसमय वास्तविक सुख की अनुभूति मिले। पुरिसादानीय वामाङ्गज प्रभु पार्श्वनाथ की प्रतिमा सर्वाङ्ग सुन्दर एवं अखण्ड है प्रभु का मुखमंडल देखने से प्रतीत होता है कि मानो शान्ति के साकार स्वरूप पुद्गलपुञ्ज यहीं आकर एकत्र न हो गये हों। आचार्य मानतुङ्ग के—यैः शान्तराग रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं निर्मापित स्त्रिभुवनैक ललाम भूतः" पदकी सार्थकता का अनुभव इन प्रतिकृतियों से अवश्य ही हो जाता है। प्रभु के अणियाले नेत्र और सुन्दर भ्रूभंगिमा और घुंघराले बाल किस दर्शक को अपनी ओर आकृष्ट नहीं करते ? प्रभु

सुन्दर कमलासन पर पद्मासनस्थ विराजमान हैं। कमलासन के नीचे गुंथी हुई सर्पाकृति बड़ी ही सुन्दर और भारतीय प्राचीन तक्षणकला का अप्रतिम उदाहरण है। गुंथी हुई सर्पाकृति प्रभु के उभयपक्ष में होकर ऊपर को चली गयी है जिससे प्रतिमा के परिकर न होते हुए भी सपरिकर जैसी प्रतीत होती है। प्रभु के स्कंध प्रदेश से ऊपर केवल सप्तफण दिखाये गये हैं जो बड़े सुन्दर विशाल और प्रेक्षणीय हैं। प्रस्तुत प्रतिमा कब और किस भाग्यशाली ने निर्माण करायी इसे सूचित करने वाला कोई भी-अभिलेख उत्कीर्णित नहीं है किन्तु शिल्पकला एवं मुखाकृति हमें गुप्तकाल में निर्मित मानने को बाध्य करती है क्योंकि इस प्रकार की कला गुप्तकालीन मूर्तियों में पायी जाती है। इस प्रकार की मूर्तियें अन्यत्र दुर्लभ हैं और जैन मूर्त्तिकला का अनुपम नमूना है।

मूल मन्दिर के सामने की देहरी में सप्तफण मंडित पार्श्व प्रभु की श्याम प्रतिमा है। कमलासनस्थित प्रभु के उभय पक्ष में इन्द्र व सिंहासनस्थ उभय सिंहों के दोनों तरफ चैत्यवन्दना करते हुए स्त्री पुरुष दिखाये हैं। इस प्रतिमा के सिंहासन पर "देवधम्मोयं र. विकस्य" लेख उत्कीर्णित है अग्रभाग में स्थापित सं० १८२३ में प्रतिष्ठापित अभिनन्दन

प्रभु के चरण हैं। मूल मन्दिर के दाहिनी ओर की देहरी में आदिनाथ प्रभु की श्याम प्रतिमा है जो अति सुन्दर और प्राचीन है प्रभु कमलासनोपरि विराजमान हैं और उभयपक्ष में इन्द्र अवस्थित हैं। पृष्ट भाग में तोरण का चिन्ह है तदुपरि छत्रत्रय के उभयपक्ष में अदृश्य देव दुन्दुभि दिखलाई गयी है। सिंहासन के एक तरफ सिंह और दूसरी ओर चैत्यवंदन करती हुई भक्त महिला अवस्थित है मध्य भाग में धर्मचक्र के उभयपक्ष में वृषभ युगल बने हुए हैं। प्रतिमा भव्य, सुन्दर एवं दर्शनीय है।

पृष्ट भागस्थित देवकुलिका में कुन्थुनाथप्रभु की सुन्दर प्रतिमा और सं० १८२३ में प्रतिष्ठित श्री सुमतिनाथ प्रभु के चरण हैं। सिंहासन पर विराजमान प्रभु के दोनों तरफ इन्द्र एवं छत्र, भामंडल के उभयपक्ष में अधरस्थित देव उत्कीर्णित हैं। मूल मंदिर के बाँयें तरफ-वाली देहरी में शान्तिनाथ स्वामी की प्राचीन प्रतिमा है जिसके तीन छत्र, भामंडल के पार्श्व में अशोकवृक्ष की पत्तियें, अधरस्थित पुष्पवर्षक देव, चामरधारी इन्द्रादि अष्ट प्रतिहार्य बने हुए हैं सिंहासन के दोनों कोनों में सिंह एवं मध्यस्थित धर्मचक्र के उभय पक्षमें मृग युगल अवस्थित हैं।

इस विशाल जिनालय के बाह्य भाग में एक छोटासा

दिगम्बर जिनालय है आगे जाने पर इंटों से बने प्राचीन विशाल जिनालयके छत-विहीन अवशेष अब भी विद्यमान हैं।

प्रस्तुत: गिरिराज से उतरनेका अलग मार्ग नहीं है इसी रास्ते से उतर कर नीचे आने पर तलहट्टिका में जैन श्वेताम्बर समाज का सुन्दर विश्रामगृह बना हुआ है जिस में यात्री लोगों के खाने पीने और आराम करने का प्रबन्ध है। यद्यपि पुरानी राजगृह की समस्त भूमि आर्कियोलोजिकल डिपार्टमैण्ट के आधीन होने के कारण नये सिरे से जमीन बेचना व मकान बनवाना निषिद्ध है पर श्वे० समाज के सार्वजनिक हित को ध्यान में रखकर गवर्नमेण्ट ने यहां भवन निर्माण की आज्ञा दी। यहाँ से चौथे पहाड़ स्वर्णगिरि जाने का मार्ग है।

(४) स्वर्णगिरि

चतुर्थ पहाड़ स्वर्णगिरि का चढ़ाव बहुत लम्बा है। चढ़े धूप में थके हुए प्रभु दर्शनेच्छु यात्री को लम्बी प्रतीक्षा से मन्दिर दृष्टिगोचर होते हैं और वह थकावट शान्ति के रूप में परिणत हो जाती है। यहाँ दो

मन्दिर हैं जिनमें एक श्वेताम्बर और दूसरा दिगम्बर सम्प्रदाय का है। श्वे० मन्दिर के पास एक लघु देहरी दिगम्बरों की है। सं० १६५७ में लोढ़ों के संघ के समय यहां ६ जिनालय, सं० १६६४ में जयविजय ने ५ जिनालयों में २० जिनबिम्ब, सं० १७५० में कवि सौभाग्य-विजय १६ जिनालयों की विद्यमानता लिखते है। इस समय श्वेताम्बर समाज के श्री ऋषभदेव भगवान का मन्दिर पूर्वाभिमुख है। मूलनायक प्रतिमा श्याम वर्ण की सपरिकर है जिसे सं० १५०४ में जाटड़ गोत्रीय महत्तियाण श्रावक शिवराज ने अपनी स्त्री माणक दे और पुत्र रणमल, धर्मदास के साथ निर्माण करवा कर श्री जिनवर्द्धनसूरि जी की आज्ञा से वा० शुभशील गणि के हस्तकमल से प्रतिष्ठित करवायी थी। प्रस्तुतः प्रतिमा के सिंहासन में उभयपक्ष में किनारे पर प्रतिमा-निर्मापक दम्पति चैत्य-वन्दन करते हुए दिखाये हैं मध्यवर्त्ती उभय सिंहों के बीच में उच्चासन पर वृषभ लांछन उत्कीर्णित है। प्रभु के आजू वाजू चामरधारी एवं तदुपरि पद्मासनस्थ अर्हन्त प्रतिमायें अवस्थित हैं। परिकर पर दोनों तरफ गजारूढ़ व्यक्ति हाथ में कलश धारण किये हुए प्रभु का मस्तकाभिषेक करने के लिए प्रस्तुत हैं। राय धनपसिंह कृत जीर्णोद्धार

समय के सं० १६३८ की प्रतिष्ठित श्री आदिनाथ और महावीर प्रभु की चरण पादुकायें विराजमान हैं।

द्वितीय मन्दिर दिगम्बरों का है जिसमें श्री शान्तिनाथ और महावीर स्वामीकी प्रतिमायें एवं आदिनाथ, नेमिनाथ जिनेश्वर के चरण विराजमान हैं।

तृतीय लघु मन्दिर भी दिगम्बरों का है, इसकी प्रतिमा बड़ी सुन्दर और प्राचीन थी। इसमें जो सुन्दर परिकर लगाया हुआ है वह प्रस्तुत प्रतिमाका न होकर किसी भिन्न स्थापत्य का अवशेष है, उभय पक्ष में किन्नर किन्नरी संगीत की तान में मस्त हो मस्तक धुनते हुए भक्ति सिक्त भाव-भङ्गिमा को धारण किये स्थित हैं। दाहिनी ओर किन्नर अपने बांये स्कंध पर वीणा रख कर दाहिने हाथ से बजा रहा है दोनों के गले में जनेऊ तथा गले में हंसली एवं भुजाओं में बाजूबंद पहिने हुए हैं। इनका अंग विन्यास बड़ा विचित्र और स्थूलकाय है। इनके उपरिभाग में पुष्पमाला लिए हुए आकाशस्थित देवों की मूर्त्तियां हैं। परिकरोपरि विशाल छत्र लगा हुआ एवं अशोकवृक्ष के पत्ते उभय पक्ष में दृष्टिगोचर होते है। मध्यस्थित प्रभु प्रतिमा के उभय पक्ष में चामरधारी खड़े हुए हैं जिनका अंगविन्यास सुन्दर है। प्रभु के उपरिभाग में छत्र व

अदृश्य देव दुन्दुभि एवं पुष्पमाला धारण किये हुए देव अवस्थित हैं। दोनों तरफ अशोकवृक्ष के पत्ते सुशोभित हैं। प्रभु पद्मासन ध्यान में कमलासन पर विराजमान हैं, निम्नभाग में सिंहासन के उभयपक्ष में सिंहद्वय उत्कीर्णित है, मध्यस्थित लाँछन पद्म जैसा प्रतीत होता है प्रतिमा पर निर्माण काल का सूचक कोई लेख नहीं है। खेद है कि अब केवल परिकर ही अवशेष रहा है, मध्यस्थित प्रतिमा को कोई चुरा कर ले गया।

मन्दिरों के पास से ही उतरने का मार्ग है नीचे उतरने पर बड़ी विशाल चट्टानें आती हैं। संभव है कि "चूल दुक्खक्खंधसुत्त" नामक बौद्ध ग्रन्थ में वर्णित कालशिला वही हो जहाँ बहुत से निग्रन्थ साधुओं ने तपश्चर्या की तीव्र वेदना सही थी। गिरिराज से उतरने पर बीहड़ जंगल के मध्यस्थित लंबे मार्ग को तै कर के लघु नदी के पार आने पर सामने वैभारगिरि है दाहिनी ओर मणियार मठ और सामने से ब्रह्मकुण्ड जाने का मार्ग है।

स्वर्णगिरि से उतरने के मार्ग से चढ़ा भी जा सकता है केवल चौथे पहाड़ की यात्रा करनेवालों को इसी मार्ग से सुगमता है।

मणियार मठ

यह स्थान सोनभंडार नामक वैभारगिरि की सुप्रसिद्ध गुफा के सामने की तरफ इस नाम से प्रसिद्ध है। जैन साहित्यकार इसे सदा से राजगृह के धनाढ्य सेठ शालिभद्र का निर्माल्य कूप, निर्मला कूइ, गहणा कूआ, शालिभद्र कूप आदि नामों से सम्बोधन करते आये हैं। शालिभद्र की कथा सर्वत्र प्रसिद्ध है। ये गोभद्र सेठ के पुत्र थे उनके ३२ स्त्रियां थी अपार धनराशि के स्वामी होने के साथ साथ अमीर इतने थे कि हरदम सत मंजिले मकान में विलास करते रहते और महाराजा श्रेणिक जैसे प्रतापी मगधदेशाधिपति को भी नहीं जानते थे और सूर्य के उदय अस्त का भी उन्हें पता नहीं था। एक बार १६ रत्नकंबल जिन्हें महाराजा श्रेणिक न खरीद सका, इनकी माताने २० लाख स्वर्ण मुद्राओं में खरीद कर इनकी स्त्रियों को दी जिन्हें उन्होंने दूसरे दिन महतरनी को दे डाली क्यों कि उनका यही नियम था कि पहिले दिन पहिने वस्त्राभरण दूसरे दिन निर्माल्य कूप में फेंक देतीं एवं वस्त्रों को महतरनी आदि को दे डालतीं। शालिभद्रका पिता गोभद्र सेठ देव हुआ था और वह प्रति दिन ३३ पेटियां वस्त्राभरण की देवलोक से भेजता था, इस से शालिभद्र के घर में कोई वस्तु की कमी नहीं थी।

महाराजा श्रेणिक को जब इनकी वैभव सम्पन्नता मालूम हुई तो सहर्ष वे स्वयं इनके साक्षात्कर के निमित्त आये। जब शालिभद्र को अपने ऊपर भी स्वामी (राजा) होनेका पता लगा तो उसने विचार किया कि मेरे पूर्वोपार्जित पुण्य में कुछ न्यूनता रह गयी अब ऐसा करूँ जिससे मेरे उपर कोई स्वामी न रहे अत: उन्होंने भगवान महावीर के पास दीक्षा लेकर तीव्र तपश्चर्या की और अन्त में अपने बहनोई धन्ना के साथ वैभारगिरि पर अनशन करके शालिभद्रजी सर्वार्थसिद्ध एवं धन्नाजी मोक्षगामी हुए। उनके आवास में जो निर्माल्य वस्त्राभूषणों का कुंआ था वही स्थान मणियार मठ है। इस में जवाहिरात की विशेषता से यह नाम पड़ गया प्रतीत होता है मणिकार - जौहरी को कहते हैं। यह भी कहा जाता है कि बौद्धकाल में यह स्थान मणिनाथ नामक योगीने कब्जे कर रखा था जिससे मणियार मठ कहलाया। यह आगे कहा जा चुका है कि कवि विजयसागर और शीलविजय इस कुंएं पर गुम्मट होनेका उल्लेख करते हैं। विजयसागर इस स्थान की हांसापुर नगर नाम से तत्कालीन प्रसिद्धि सूचित करते हैं। आजकल यह स्थान आर्कियोलोजिकल डिपार्टमेंट के अधिकार में है। यहां गवर्नमेंट ने खुदाई करवायी थी इससे पूर्व यहां टीले पर

जैन मन्दिर था जिस में शालिभद्र के नामोल्लेख वाली महत्वपूर्ण अर्हन्त प्रतिमा विद्यमान थी। सरकारी पुरातत्व विभाग के लोगों ने खुदाई के निमित्त मन्दिर और मूर्त्तिको हटा दिया सन् १६०५-६ ई० की आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्टस के पृ०-१०३ में उपर्युक्त मूर्तिका शिलालेख छपा है। है उक्त लेख में "......राजगृहे नागस्य शालिभद्र कस्य ....." पाठ मिलता है। स्वर्गीय पूरणचन्द्रजी नाहर का लेख "राजगृह और नालंदा" ओसवाल नवयुवक वर्ष ८ सं० ३ में प्रकाशित हुआ है उसमें आपने लिखा है कि "मैंने इस लेख सहित मूर्त्ति की सरकारी दफ्तरों और अजायबघरों में विशेष खोज की थी परन्तु खेद है कि अद्यावधि कोई पता नहीं लगा" महाभारत के सभापर्व के अध्याय २१ के ६ वें श्लोक में "मणिनाग" स्थान का उल्लेख है संभव है वह इसी स्थान का सूचक हो। प्राचीन मणिनाग से इस लेख के "नागस्य शब्द" का सम्बन्ध सूचित होता है। यहां के मन्दिर में जो शालिभद्रजी के चरणपादुका प्रतिष्ठित थे जिनका लेख नाहरजी ने लेखाङ्क १८५८ में प्रकाशित किया है, विदित होता है कि सं० १८३७ माघ सुदि ५ को ओसवाल विराणी मोतुलाल की भार्या सताबो बीबीने इन चरणों की स्थापना की थी।

मणियार मठ स्थान बड़ा सुन्दर विशाल और चित्ता-कषक है। कहते हैं कि मध्यस्थित विशाल कूप और चारों ओर ३२ अन्य निर्माल्य कूप थे जिनमें से कुछ के अवशेष अधिस्थान इंटनिर्मित विशाल चतुष्किकायें अब भी विद्यमान हैं। प्रधान स्थान बड़ा सुन्दर है उतरने चढ़ने के लिए सीढ़ियां लगी हुई हैं एवं चारों तरफ इंटों से चुनी हुई मूर्त्तियां थीं जो अब दो एक के अतिरिक्त सब नष्ट हो चुकीं आर्कियालोजिकल सर्वे रिपोर्ट सन् १६०५-६ में इसके फोटो भी छपे हैं।

५ वैभारगिरि

महातीर्थ राजगृह का सर्वाधिक महत्वपूर्ण, पुरातत्त्व सामग्री संपन्न, अचलराज वैभारगिरि का मार्ग अपेक्षा कृत सुगम है। इसके दो मार्ग हैं, चतुर्थ पहाड़ के यात्रा कर के आनेवाले कुछ यात्री स्वर्ण भण्डार के पास से और अधिकांश ब्रह्मकुण्ड के ऊपर से चढते हैं। पहला मार्ग दुरूह है। यह पहाड़ अनेक दृष्टि से अपना वैशिष्ठ्य रखता है। गरम पानी का सुप्रसिद्ध ब्रह्मकुण्ड तथा इतर अधिकांश द्रह इसी गिरिराज की तलहट्टिका में वर्त्तमान होनेके साथ २ हिन्दूओं के बहुत से मंदिर एवं तीर्थस्थान हैं, जिन का परिचय आगे दिया

जा चुका है। वैभारगिरि पर चढ़ते ही सर्व प्रथम बड़े पाषाण खंडसे निर्मित सुन्दर स्थान है जिसे लोग जरासन्ध की बैठक कहते हैं यह वही स्थान है जिसे बौद्ध ग्रन्थों में पिप्पल गुहा लिखा है। इसमें कई छोटी छोटी गुफाएं हैं एवं निर्माण कला प्रशंसनीय है। भगवान महावीर के समौशरण अधिकांश इसी पहाड़ के ऊपर मैदान में हुआ करते थे जहां अभी जिनालय बने हुए हैं। श्री जिनप्रभसूरिजी ने वैभारगिरि कल्प में तथा दूसरे यात्री मुनिगण ने इस गिरिराज की बड़ी स्तवना की है। दादासाहब श्रीजिनकुशलसूरिजी ने मन्त्रिदलीय ठ० अचल सिंह निर्मापित चतुर्विंशति जिनालयके योग्य जिन मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा की थी उनमें से अब कुछ भी वहां अवशेष नहीं। यही दशा खरतरगच्छीय लोकहिताचार्यजी द्वारा प्रतिष्ठित बिम्ब—मन्दिरों की है।

श्री जिनवर्द्धनसूरिजी अत्रस्थित जिनालयों की संख्या नहीं लिखते परन्तु मुनिसुव्रत स्वामी, नेमिनाथ स्वामी तथा दूसरे जिनालयों के अतिरिक्त गौतमादि गणधर स्तूप वंदना का हाल देते हैं। कवि हंससोम २४ प्रासादों मे ७०० जिनबिम्ब, अर्द्धकोश आगे गणधर मन्दिर का उल्लेख करने के साथ साथ धन्नासालिभद्र काउसग्गिया - जो उसी शताब्दी में प्रतिष्ठित हो चुके थे—एवं रोहणिया वीर की

गुफा का आस्तित्व लिखते हैं। कवि जयकीर्ति कुछ तीर्थंकरों के नाम सह ५२ जिनालय मुनिसुव्रत स्वामी का तथा मुनिसुव्रत तथा महावीर जिनालय से दक्षिण ११ गणधर पादुका पूजा के अतिरिक्त भूमिग्रहों के अन्दर कई काउसग्गिए तथा पद्मासनस्थ जिनबिम्ब, ईश्वर देहरा (शिवालय जो खण्डहर ५२ जिनालय के पास निकला है) के सन्मुख धन्ना शालिभद्र काउसग्गियों का वर्णन करते हैं। सं० १६६४ में जयविजय अत्रस्थित वीर जिनालय, गणधर पादुका मन्दिर, २५ जिनालय, धन्नाशालिभद्र मन्दिर तथा रोहणिया चोर की गुफा स्थान का पता—५२ जिनालय के पृष्ट भाग में कालंबरि वृक्ष के नीचे-सूचित करते हैं। कवि विजयसागर धन्नाशालिभद्र व गणधर चरणों के अतिरिक्त पांचों पहाड़ों के १५० मन्दिरों में ३०३ बिम्ब संख्या देते हुए वेभारगिरि के जिनालयों की अलग संख्या नहीं देते। सौभाग्यविजयजी यहां ५२ मन्दिर, गणधर व धन्ना शालिभद्र मन्दिर की विद्यमानता स्वीकार करते हैं।

पहाड़ के ऊपर चढ़ने पर समतल भूमि आती हैं जहाँ मन्दिर बने हुए है पहला पूर्वाभिमुख मन्दिर है जिसमें प्रभु प्रतिमा (अभी केवल वेदो बनी हुई है) और आमने सामने दाहिने सं० १६११ के नेमिनाथ और बांये तरफ सं० १६०० में

हकूमतराय प्रतिष्ठापित शान्तिनाथ स्वामी के चरण हैं। दूसरे मन्दिर की मध्यस्थित देहरी में शान्तिनाथ स्वामी के चरण तथा चारों तरफ की चार देवकुलिकाओं में नेमिनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और आदिनाथ भगवान के चरण हैं। इन दोनों मन्दिरों के बीच से एक रास्ता बांये हाथ की ओर जाता है जहाँ धन्ना शालिभद्र जी का मन्दिर बना हुआ है मंदिर में सं० १५२४ में कमलसंयमोपाध्याय प्रतिष्ठित मुनि युगल की प्राचीन मूर्त्ति तथा एक नवीन मूर्त्ति विराजमान है।

चतुर्थ पूर्वाभिमुख विशाल मन्दिर मुनिसुव्रत स्वामी का है। सं० १६२१ पालीताना में प्रतिष्ठित श्वेत प्रतिमा बड़ी मनोज्ञ है दाहिनी ओर वीर प्रभु के चरण हैं गर्भगृह से बाहर दाहिनी ओर गौतम स्वामी की टूँक से लाये हुए ११ गणधर चरण विराजमान है बांये तरफ महावीर स्वामी की श्याम प्रतिमा है। यहां से पावापुरी जी का नयनाभिराम जलमंदिर बड़ा ही सुहावना दृष्टिगोचर होता है। एकादश गणधर पादुका सं० १८३० मा० शु० ५ को जगतसेठ फतैचंद्र जी गैलड़ा के पौत्र जगतसेठ महताबराय की पत्नी शृंगारदेवी के निर्माण करवा कर वैभारगिरि पर स्थापित करने का अभिलेख विद्यमान है। दादासाहब श्रीजिनदत्तसूरिजी के चरण सं० १९८५ में श्री जिनचारित्रसूरि प्रतिष्ठित है अन्नस्थित मंदिरों

का जीर्णोद्धार सं० १८२६ में हुगली के गांधी माणकचंद ने कराया था। सं० १८७४ में श्रीजिनहर्षसूरिजी प्रतिष्ठित मंदिरों का फिर जीर्णोद्धार सं० १९३८ में राय धनपतसिंह जो ने कराया जिसका चरणपादुका लेखों में उल्लेख है। सं० १९०० में लखनऊ वाले श्रीजिननंदीवर्द्धनसूरिजी के समय में मुनि कीर्त्युदय ने कई चरणों की प्रतिष्ठा करवायी थी। इन सब के लेख नाहरजी ने 'जैन लेख संग्रह' के दोनों भागों में प्रकाशित किये हैं। सं० १९११ में श्रीजिनमहेन्द्र-सूरिजी ने भी यहाँ प्रतिष्ठा करवायी थी गौतम स्वामी की टूँक सब से ऊंची मुकुटायमान है जहाँ जीर्णोद्धार होने के कारण अभी प्रतिमा गांवमंदिर के संग्रहालय में तथा चरण मुनिसुव्रत स्वामी के मंदिर में विराजमान हैं। गौतम स्वामी की टूँक जाते समय रास्ते में दो एक प्राचीन मन्दिरों के खण्डहर आते हैं। इतः पूर्व जैन मन्दिर के पीछे एक गुफा है जिसे रोहणिया चोर की गुफा कहते हैं कहा जाता है कि यह गुफा सोनभण्डार तक गयी हुई है पर अब अन्धकार चमगादड़ों का प्राचुर्य आदि कारणों से मार्ग बन्द है। बौद्ध साहित्य में इसे शतपर्णी गुहा कहा है।

शतपर्णी गुफा—जैन मन्दिर के उत्तर की ओर लगभग १०० फीट नीचे दो शतपर्णी गुफाएं अवस्थित हैं जहाँ

गौतम बुद्ध के निर्वाण (ई० पूर्व ५४३) समय में बौद्ध श्रमणों की परिषद् एकत्र हुई थी। पूर्वी गुफा ५५ फीट लम्बी व १६ फीट चौड़ी है। दूसरी गुफा प्रथम से ५० फीट पश्चिम में अवस्थित है जिसकी गहराई ४७ फीट चौड़ाई २५ फीट और ११ फीट ऊँची है। इस गुफा में जानेवाले को कहीं खड़े कहीं बैठे और कहीं रेंग कर जाने पर भी थाह नहीं मिलता। इन्हीं शतपर्णी गुफाओं के नीचे वैभारगिरि के पास शतपर्णी मण्डप अजातशत्रु द्वारा निर्माण होने का उल्लेख बौद्ध साहित्य में पाया जाता है। सुना है कि अब भी जंगल में उसके खंडहर विद्यमान हैं।

खंडहर—मध्यस्थित जैन मन्दिर के दाहिनी ओर राजकीय पुरातत्त्व विभाग ने खुदाई करके दो प्राचीन मन्दिर निकाले हैं। जिन में एक महादेवजीका मन्दिर है जिसका उल्लेख सं० १६५७ के यात्रा वर्णन में कवि जयकीर्त्ति ने किया है। दूसरा उसीके पास कई देवकुलिकामय विशाल ५२ जिनालय नाम से प्रसिद्ध मंदिर निकला है जो खण्डहर रूप से विहार गवर्नमेंण्ट के पुरातत्त्व विभागके संरक्षण में है। अभी प्रस्तुत मंदिर की अर्द्ध दिवालों के अतिरिक्त छत किसीका भी अवशेष नहीं है गर्भगृह और इतर देहरियां जब कि समतल भूमि में है, एक देहरी में प्रवेश कर कई पैड़ियां नीचे उतरना

पड़ता है। मंदिर ईटों से बना हुआ है जिसमें आलों के अन्दर अब भी बहुतसी प्राचीन प्रतिमाएं खण्डित व अखण्डित रूप में विद्यमान है। इस मन्दिर में सहस्राब्दी पूर्व से लेकर सं० १५०४ तक की प्रतिष्ठित प्रतिमाएं विराजमान हैं, नहीं कहा जा सकता कि यह मन्दिर कब भूमिसात् हो गया था। अब इस मंदिर की मूर्तियों का परिचय दिया जाता है।

गर्भ-गृह में तीन प्रतिमाएँ हैं जिनमें मूलनायक श्री महावीर प्रभु की प्रतिमा सुन्दर और अष्ट प्रातिहार्य युक्त है। पृष्ट भागमें तोरण चिन्ह पर, प्रभामंडल एवं उभय पक्ष में पुष्पमालाधारी देव युगल हैं। ऊपरिभाग में छत्रत्रय के उभयपक्ष में अदृश्य देव-दुन्दुभि उत्कीर्णित है। प्रभु अतिशय शान्त मुद्रा में विराजमान हैं। तन्निम्नभाग में त्रिशला माता की सुसुप्त सुन्दर प्रतिमा है जिस के गले में हार, हाथों में भुजबन्द, चूड़ियां धारण की हुई हैं। कमर में कन्दोरा व जनेऊ भी दिखाई गयी है। सिराहने और पैरों के पास बड़े-बड़े मसण्ड रखे हुए हैं। बांये हाथ में कमल एवं दाहिना हाथ मस्तक के नीचे रखा हुआ है। केश पाश बड़ी सुन्दरता से संवार कर जूडा बना दिया है जिसके ऊपर त्रिकोण किरीट धारण किया हुआ है। माता पलङ्ग

पर सोयी हुई हैं। चामरधारिणी के भी इसी प्रकार के वस्त्राभरण पहने हुए हैं।

प्रभु के बांये तरफ के आले में दूसरी चन्द्रप्रभ स्वामी की प्राचीन प्रतिमा है जिसके उभयपक्ष में तीन-तीन अर्हन्त प्रतिमाएँ और उनके निम्नभाग में चामर डुलाते हुए इन्द्र एवं ऊपरिभाग में अधरस्थित देव एवं अदृश्य देव दुन्दुभि व छत्रत्रय विराजमान है। प्रभु कमलासन पर विराजमान हैं, निम्नवर्त्ती सिंहासन के उभयपक्ष में सिंह मध्य में चन्द्र लांछन के नीचे धर्मचक्र उत्कीर्णित है।

तीसरी ऋषभदेव स्वामी की प्रतिमा बड़ी सुन्दर और प्राचीन है। प्रस्तुत: प्रतिमा के उभयपक्ष मे इन्द्र अवस्थित हैं जिन की धोती के सल तथा अलंकारादि का चिन्ह स्पष्ट है। तदुपरि पुष्पमालाधारी देव अप्सराएं एवं चामर छत्रादि प्रतिहार्य हैं। प्रभु के मस्तकोपरि अलंकृत जटाजूट और स्कंध प्रदेश पर लटकती हुई केशावली बड़ी मनोहर प्रतीत होती हैं। भामंडल के पीछे छत्रत्रय के उभयपक्ष में दो हाथ हैं जिनमें वलय पहिने हुए हैं। बांया हाथ आशीर्वादात्मक एवं दाहिने हाथ में अंगूठे व तर्जनी के मध्य में वस्त्र जैसी वस्तु है। इस प्रतिमा के पादपीठ पर चिन्ह स्वरूप पुष्टकाय वृषभ युगल बैठे हुए हैं जिनके मध्य में त्रिगढ़े पर धर्मचक्र

जैसी लम्बगोल आकृति विराजमान है। प्रस्तुत: प्रतिमा पर एक अभिलेख विद्यमान है जो खूब गहरे और स्पष्टाक्षरों में उत्कीर्णित है। यद्यपि यह लेख निर्माण संवतादि का विवरण नहीं बतलाता फिर भी इसकी लिपि विक्रम की छट्ठी सातवीं शताब्दी से पश्चात की नहीं मालूम पड़ती। लेख दोनों वृषभों के ऊपरिभाग में इस प्रकार है :—

"आचार्य वसन्तणन्दि दे धम्मोय:"

ऋषभदेव प्रतिमा के प्रतिष्ठापक आचार्य वसन्तणन्दि कब किस शाखा में हुए यह पुरातत्त्वज्ञ विद्वानों को पता लगाना चाहिए।

जिनालय के बाह्यभाग की वामपार्श्ववर्ती देवकुलिका में जो प्रतिमा है उसमें निम्नोक्त भाव व्यक्त किये गये हैं :—

अशोकवृक्षोपरि विराजित अर्हन्त प्रतिमा है। छाया में विराजमान एक यक्ष और तन्निकटवर्त्ती यक्षिणी की मूर्त्ति उत्कीर्णित है जिसके बाँये गोडे पर बालक विद्यमान है। मैंने घुसरावांस्थित भगवती मन्दिर के मूर्त्ति संग्रह में एक ऐसी ही वृक्षोपरि विराजित जैन प्रतिमा देखी थी "एक आले में लगभग १० इंच चौड़ी और ५।। इंच

ऊंची पट्टिका विराजमान है जिसमें वृक्षोपरि पद्मासन स्थित अर्हन्त प्रतिमा १।। इंच की उत्कीर्णित है। वृक्ष की छाया में दाहिनी ओर एक यक्ष मूर्त्ति है जिसका दाहिना गोडा ऊंचा और बाँया गोडा नीचा किया हुआ है। दाहिने हाथ में कुछ आयुध और बाँया हाथ गोडे पर रखा हुआ है। इसके वाम पार्श्व में देवी-यक्षिणी की मूर्त्ति विराजित है जिसका भी दाहिना गोडा ऊंचा और बांये गोडे पर एक बालक अवस्थित है। बालक का हाथ माता के बाँये स्तन पर और माता का बाँया हाथ बालक की पीठ पर रखा हुआ है एवं दाहिने हाथ में आम्रलुंब धारण किया हुआ प्रतीत होता है। उभय मूर्त्तियों के गले में हार पहिना हुआ है। जिस वृक्ष की धड़ पर अर्हन्त प्रतिमा विराजित है पत्ते लंबे आकार के हैं।" प्रस्तुत: मूर्त्ति भी इसी प्रकार की है इसमें विशेषता यह है कि पादपीठ पर पांच मूर्त्तिएं उत्कीर्णित है जिनका दाहिना गोडा ऊंचा और बाँया गोडा नीचा है हाथों द्वारा माला-जाप किया जा रहा है। इस प्रकार की उपलब्ध प्राचीन जैन मूर्त्तियां नहीं कहा जा सकता कि किस कथावस्तु से सम्बन्धित भावों की प्रतीक हैं? जैन शास्त्रों में जम्बूवृक्ष, शाल्मलीवृक्षादि पर शास्वत प्रतिमाओं का वर्णन आता है हमारे कलाभवन में एक

१५०-२०० वर्ष प्राचीन एक सुन्दर चित्र है जिसमें भी वृक्ष पर अर्हन्त प्रतिमा विराजमान है और चतुर्विध संघ दर्शन पूजनादि के लिए प्रस्तुत दिखाया गया है पर शास्वत वृक्ष स्थान में चतुर्विध संघ का जाना संभव नहीं है। ऐसा ही एक चित्र पटने के जैन मन्दिर में है। आशा है मूर्त्ति-कलाविद् एवं पुरातत्वज्ञ विद्वान इस प्रतिमा के विषय में प्रकाश डालेंगे।

सामने की देहरी में ऋषभदेव भगवान की खण्डित प्रतिमा विराजमान है जिसके सिंहासन में बैल व मध्य में चार भुजाओंवाली यक्षमूर्त्ति के पास चैत्यवंदना करती हुई स्त्री अवस्थित है। युगादिदेव कमलासन पर विराज-मान है और उनके दोनों ओर इन्द्र चामर ढुला रहे है। इस प्रतिमा पर निम्नोक्त लघु अभिलेख उत्कीर्णित है।

देव धम्मोयं वीराकस्य

नं० ५ देहरी में महावीर प्रभु की प्रतिमा विराजमान है जिसके मस्तकोपरि छत्रत्रय और उभयपक्ष में इन्द्र और तदुपरि गजारूढ़ व्यक्ति अवस्थित है। निम्नभाग में दोनों तरफ स्त्री पुरुष खड़े हैं। सिंहासन पर मध्य में सिंह लाछन और उभयपक्ष में शिलालेख उत्कीर्णित है जिससे ज्ञात

होता है कि सं० १५०४ में फाल्गुन शुक्ला नवमी को महत्तियाण जाटड़ गोत्रीय सं० देवराज के पौत्र सं० जिनदास ने भगवान महावीर की प्रतिमा निर्माण कराके खरतरगच्छीय श्री जिनसागरसूरिजी की आज्ञा से वाचना चार्य शुभशीलगणि से प्रतिष्ठित करवायी।

यह खण्डहर और यहां की गुप्तकालीन प्राचीन मूर्त्तियां इस ध्वस्तावस्था में भी राजगृह तीर्थ के अतीत गौरव और कीर्त्ति को अक्षुण्ण रखने के लिए पर्याप्त हैं। कतिपय मूर्त्तियां तो इतनी सुन्दर, सुडौल और भावपूर्ण हैं कि दर्शक निर्निमेष दृष्टि से निहारता हुआ अज्ञात शिल्पी की सूक्ष्म व सधी हुई टांकी की कारीगरी के वैशिष्ट्य के साथ २ अपने हृदय में सहस्राब्दी पूर्व की सांस्कृतिक चेतना लहर को प्रवाहित कर उन शान्त भावों को जागृत करने में सफल होता है जिसके लिए चिर साधना अपेक्षित है।

अम्बिकादेवी की एक प्रतिमा जिसे विद्वानों ने त्रिशला माता की मूर्त्ति माना था अत्यन्त सुन्दर एवं दर्शनीय है। एक आम्रवृक्ष की छाया में सिंहासन पर कमलोपरि अम्बिका माता विराजमान हैं सिंहों के मध्य में एक व्यक्ति दाहिना गोडा ऊंचा किये बांये गोडे पर हाथ रख कर बैठा

राजगृह —

श्री अम्बिकादेवी, वैभारगिरि

हुआ है। अम्बिका देवी के उभयपक्ष में चामरधारिणी परिचारिकाएं अवस्थित है जिनका अंगविन्यास अति सुन्दर है। एक हाथ में चामर और दूसरा हाथ जंघा पर रखा हुआ है। इतर मूर्त्तियों की भांति इनके भी आभरण पहिने हुए हैं। अम्बिका देवी के बांये गोडे पर बालक बैठा हुआ है जिसने बाल-चापल्यवश देवी के हार को पकड़ रखा है जो बांये स्तन के उपरि भाग से आया है देवी का दाहिना पैर नीचा किया हुआ है जो सिंहासनस्थ सिंह की पीठ से स्पर्श करता है। कानों में कुण्डल गले में हार, सुन्दर केशविन्यास मण्डित जूड़े के आगे किरीट शोभायमान है जिसका निम्न भाग वीणेदार है। देवी के दाहिने हाथ में आम्रलुंब धारण की हुई है। आम्रवृक्ष की धड़ देवी के दाहिनी ओर है और शाखा बांयी तरफ चली गई है जिसके पत्ते एवं पके हुए आम बड़े नयनाभिराम लगते हैं। वृक्ष के ऊपर पद्मासनस्थ अर्हन्त प्रतिमा बनी हुई है जो. कमलासन पर विराजमान है, ऊपरिभाग में छत्र धारण किया हुआ है प्रभु प्रतिमा के उभयपक्ष में दो चामरधारी हैं वे भी कमलोपरि अवस्थित हैं ऊपरि भाग में अदृश्य देव दुन्दुभि मालूम देती है। यह सर्वाङ्ग सुन्दर अम्बिका मूर्त्ति दि० मन्दिरस्थ प्रतिमा से कुछ भिन्नता रखती है उसके

कमलासन के नीचे वाहन रूप एक सिंह बैठा है जब कि इसमें सिंहासन पर ही कमलासन है। उसमें दूसरा बालक गोड़े के पास खड़ा है जिसका देवी ने हाथ पकड़ रखा है जिससे हाथ में आम्रलुंब का अभाव है। इसमें दूसरा बालक या कोइ भक्त परिचारिकाओं के निम्नभाग में चैत्यवन्दन करता हुआ हाथ जोड़े बैठा है जिसका दाहिना गोडा ऊंचा और बांया गोडा नीचे किया हुआ है। वह मूर्त्ति मन्दिराकृति में वृक्ष के नीचे है और यह वृक्षोपरि अर्हन्त प्रतिमा धारण किये हुए है कला की दृष्टि में यह प्रतिमा उससे और भी बढ़ी चढी है पर खुदाईके समय कई स्थानोंमें खण्डित हो गई है।

देवकुलिका नं० ८ में नेमिनाथ प्रभु की कमेड़ी रंग की विशाल प्रतिमा विराजमान है जिसके चिन्ह-लांछन स्वरूप संख उत्कीर्णित है। उभय पक्ष में ६ ग्रह की प्रतिमाएं परिकर में बनी हुई हैं जिसकी वेश भूषा १५०० वर्ष प्राचीन मालूम होती है। प्रस्तुत: प्रतिमा खण्डित है। नं० ९ देहरी में कायोत्सर्ग ध्यान में पांच अर्हन्त प्रतिमाएं वृक्ष के नीचे खड्गासनस्थ अवस्थित हैं। नं० १० एक देहरी में पार्श्वनाथ स्वामी की लालश्वेतधारीदार पाषाण की सप्तफणमण्डित सपरिकर प्रतिमा है इसमें अष्ट प्रतिहार्य व नवग्रह भी अंकित हैं। तत्पार्श्ववर्त्ती देहरी नं० ११ में भी पार्श्वनाथ भगवान की

सप्तफणी प्रतिमा है जिस में भी सं० १५०४ फा० सु० ६ को श्रीजिनसागरसूरि निदेश से वा० शुभशील गणि के प्रतिष्ठा कराने और महत्तियाण श्रावक के निर्माण कराने का उल्लेख है। नं० १३ देहरी में कायोत्सर्गस्थ खण्डित अर्हन्त प्रतिमा और दूसरी में सपरिकर प्रभु प्रतिमा है जिसके परिकर में उभय पक्ष में गजारूढ़ व्यक्ति अवस्थित है। एक आले में ऋषभदेव प्रभु की प्रतिमा है। एक पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा के ऊपरि भाग में तीन प्रतिमाएं उत्कीर्णित हैं। एक प्रतिमा घिसी हुई काउसग्गियों की और एक ध्यानस्थ खंडित प्रतिमा के उभय पक्ष में इन्द्र व अप्सराएं अवस्थित हैं। एक देहरी की कायोत्सर्ग ध्यानस्थित प्रभु प्रतिमा के परिकर में दो इन्द्र व दो अप्सराएं उत्कीर्णित हैं। इस प्रकार सब २५ देवकुलिकाएं है। जिसमें कतिपय खाली हैं। एक नेमिनाथ भगवान की संख लांछन वाली खड़ी ध्यानस्थ बड़ी प्रतिमा है जिसके उभय पक्ष में इन्द्र उपस्थित हैं।

इस जिनालय के आगे एक भूमिगृहस्थ अलग देव-कुलिका है जिसमें जाने के लिए कुछ पैड़िया नीचे उतरना पड़ता है—उसमें विराजित प्राचीनतम और विशाल प्रतिमा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है यह लगभग ३ फीट ऊंची है। प्रस्तुत: प्रतिमा ब्रह्मचारी चूड़ामणि द्वाविंशतम तीर्थंकर

श्री नेमिनाथ स्वामी की है। अत्रस्थित अधिकांश प्रतिमाएं श्याम पाषण की हैं जब कि यह नीले रंग जैसी कोमल पाषाण की है। इसकी पद्मासन मुद्रा और निर्माण शैली देखते प्रतीत होता है कि पाषाण-फलक अधिक चौड़ा नहीं रहा होगा। इस प्रतिमा का मस्तक नष्ट हो जाने से दूसरा मस्तक लगा दिया हैं, छत्रादि अवशेष नहीं है। निम्न भाग में बना हुआ सिंहासन खास उल्लेखनीय है। इसके उभयपक्ष में किनारे पर दो सिंह अपने दो पैरों के बल खड़े हुए बड़े ही सुन्दर मालूम देते हैं। इनकी सुन्दर केशावली और अंगविन्यास पूर्व गुप्तकालीन कला का प्रतिनिधित्व करती है। तत्पार्श्व में दो अर्हन्त प्रतिमाएं पद्मासनस्थ विराजमान हैं जिनके पृष्टभाग में भामण्डल बना है और मध्य में संभवत: प्रभु के परमभक्त, त्रिखण्डाधिपति, यादवकुल तिलक श्री कृष्ण वासुदेव की खड़ी हुई मूर्त्ति है, ये प्रभु के चचेरे बड़े भ्राता थे। प्रस्तुत: मूर्त्ति बड़ी सुन्दर भक्तिसिक्त भावों की अभिव्यक्ति करने वाली एवं अलंकृत केशावली विराजित है. कानों में कुण्डल और गले में हार पहना हुआ है श्री कृष्ण के दाहिने हाथ में संख धारण किया हुआ है उभय भुजाओं के ऊपर से आए हुए लंबे दुपट्टे को छोर बांये हाथ में पकड़ कर भूमि स्पर्श होने से बचा लिया प्रतीत होता है

वस्त्र के सल बड़े ही सुहावने मालूम होते हैं। गोड़ों से उपर तक पहनी हुई धोती के सल खूब स्पष्ट हैं और छोर ऐडी तक लटकता है। कमर में बन्धे हुए कमरबन्ध की गांठ देने के बाद उभय पक्ष में छोर फैले हुए खूब स्वाभाविक मालूम होते हैं। पूर्वकाल में धोती गोड़ों तक पहनी जाती थी न कि आजकल की तरह एड़ी तक श्रीकृष्ण के समस्त शरीर के पृष्ट भाग में लम्बगोल चक्राकृति उत्कोर्णित है जो प्रभामण्डल तो नहीं हो सकता क्यों कि प्रभामण्डल मुखाकृति के पीछे वृत्ताकार हुआ करता है। प्रस्तुत प्रतिमा का निर्माण काल क्या है ? यह जानने के लिए प्रतिमा के निम्न भाग में उत्कीर्कित २। फीट लम्बा प्राचीन लिपिवाला अभिलेख विद्यमान है पर पत्थर की पपड़ियां उतर जाने व घिस जाने से स्पष्ट नहीं पढ़ा जा सकता इसी देहरी में ऋषभदेव प्रभु, नेमिनाथ प्रतिमा जिसके उपरि भाग में तोरण पर ३ प्रतिमाएं एवं एक खड़ी प्रतिमा है। तीन दिगम्बर ध्यानस्थ प्रतिमा भी प्रतिहार्य युक्त हैं। ये सब प्रतिमाएं प्राचीन सुन्दर और गुप्तकाल की निर्मित हैं।

इस गिरिराज पर बहुसंख्यक जिनालय पूर्वकाल में विद्यमान थे उनमें जिस प्रकार यह विशाल जिनालय निकला है खुदाई करनेपर और भी पुरातत्त्व की सामग्री उपलब्ध

हो सकती है गौतमस्वामी को टुंक के मार्गमें भी दो एक खण्डहर चिन्ह विद्यमान हो अत्रस्थित मन्दिरों की अधिकांश प्रतिमाएं अभी गांवमन्दिर के संग्रहालय में है। उन सबका परिचय आगे दिया गया है। मुनिसुव्रत जिनालय जाते दाहिनी ओर एक दिगम्बर जिनालय है जिस में कतिपय प्राचीन सुन्दर प्रतिमाएं हैं जिस में महावीर प्रभु की प्रतिमा बड़ी सुन्दर भव्य और प्राचीन है उभय पक्षस्थित इन्द्रों का अंग विन्यास बड़ा सुन्दर और तदुपरि पुष्पमालाधारिणी अप्सराएं एवं मस्तक पर छत्र विराजमान है। प्रभामण्डल इस प्रतिमा का गोल न होकर ऊपर से चौड़ा और नीचे से संकड़ा—पान जैसा प्रतीत होता है। सिंहासन पंच चतुष्किकासन १० कोण वाला है जिस में ५ चित्र उत्कीर्णित है मध्य में सिंह लांछन उभय पक्ष में चैत्य वंदन करते भक्त और अंत में सिंहासन के सिंह बने हुए हैं प्रभु प्रतिमा कमलासन पर विराजमान है। दूसरी दिगम्बर प्रतिमा खड्गासनस्थित है जिसके उभयपक्ष में चामरधारी इन्द्र खड़े हुए हैं। बेल पत्तियों से अलंकृत प्रभामण्डल के ऊपरि भाग में अधर स्थित अप्सराएं दिखायी गयी हैं। प्रभु के मस्तकोपरि धुंघराले बाल व छत्रत्रय विराजमान है। कमलासन के निम्नभाग में बड़े २ अक्षरों में उत्कीर्णित

लेख इस प्रकार है—श्री वर्द्धमान देवः ।। श्री पुनवर्द्ध—या वी केः ।।

नेमिनाथ प्रभु की प्रतिमा भी बड़ी सुन्दर भव्य और अष्ट प्रतिहार्य युक्त है सिंहासन में उभय पक्ष में सिंह और मध्य में धर्मचक्र के दोनों ओर सख लांछन उत्कीर्णित है निम्नभाग में भक्तयुगल दिखाये गये हैं। इसी प्रकार की एक शान्तिनाथ प्रभु की प्रतिमा है जिसमें मृग लांछन है। मन्दिराकृति उत्कीर्णित दो काउसग्गिए एवं नेमिनाथ स्वामी के चरणों के अतिरिक्त एक चौबीस भगवान की सुन्दर पट्टिका है जिसके ऊपर की पंक्ति में ७ दूसरी में ८ और तीसरी में ८ कायोत्सर्ग ध्यानस्थ प्रतिमाएं हैं निम्नभाग में मध्य में पद्मासनस्थ प्रतिमा है जिसके दाहिनी और सुसुप्त त्रिशला माता व शिशु महावीर प्रतिमा है जिसके एक तरफ परिचारिका पैर चांपते हुए अवस्थित है। मूल प्रतिमा के बांयी ओर अंबिका एवं चैत्यवन्दना करते भक्त उत्कीर्णित है। अब अम्बिका माता की सुन्दर प्रतिमा का परिचय दिया जाता है।

एक मन्दिराकृति के मध्य में सिंहवाहिनी कमलासन स्थित अम्बिका माता विराजमान हैं। प्रस्तुतः प्रतिमा मगध देश के शिल्प स्थापत्य का एक श्रेष्ठतम उदाहरण

है। अम्बिका माता के बायें गोड़े पर बालक बैठा हुआ है। दाहिना गोड़ा कमलासन के निम्नस्थित सिंह की पीठ पर अवस्थित है। सिंह अपने दोनों पंजे टिकाकर शान्त हो बैठा है उसके पास एक दूसरे खड़े हुए बालक का हाथ अम्बिका माता ने अपने करकमलों से पकड़ रखा है। बालकों के धोती पहिनी हुई है। माता की मुखाकृति शान्त सौम्य और लावण्यमयी होने के साथ साथ मातृत्त्व भाव की स्पष्ट अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है। मस्तोकोपरि मुकुट और कानों में धारण किये हुए कुण्डल तत्कालीन कर्णालंकार प्रथा पर प्रकाश डालते हैं। मस्तक पर बंधा हुआ केश पाशका जूड़ा घटाकृतिमय है पृष्ट भाग में आम्रवृक्ष शोभायमान है। देवी के गले में दुलड़ा हार पहना हुआ है जिसका मध्य भाग चौड़ा और विशेष प्रकार से अलंकृत है। दूसरा हार खूब लंबा है जो उभय स्तनों के मध्यवर्त्ती होकर नाभितक पहुंचा हुआ है। इस हार के निम्नभाग में लोकेट बना हुआ है। अंकस्थित बालकने अपने दाहिने हाथ से हारको पकड़ रखा है। जो बाल सुलभ चापल्य का स्पष्ट द्योतक है। माता के भुजाओं में त्रिकोण भुजबन्द व प्रौढावस्था सूचक कटिप्रदेश में खूब मोटा कन्दोला पहिना हुआ है। इस में कोई सन्देह नहीं कि शरीर रचना बड़ी

भावमय, सुरुचिपूर्ण और स्वाभाविक हुई है पैरोंपर वस्त्र चिन्ह स्पष्ट रुपेण अंकित है।

गौतम स्वामीजी की टूंक—वैभारगिरि के सर्वोच्च शिखर पर गौतम स्वामी की टुंक है जो अत्यन्त शान्त और सुन्दर स्थान पर अवस्थित है। यहाँ से जिर्णोद्धार के लिये प्रतिमा व चरण हटा कर गांव मन्दिर व मुनिसुव्रत जिनालय मे विराजमान किये हुए है।

सोन भण्डार

वैभारगिरि की दक्षिण तलहट्टिका में यह सोनभण्डार नाम से प्रसिद्ध विशाल गुफा है इस स्थान को लोग श्रेणिक का स्वर्णभण्डार, शालिभद्र का खजाना आदि भिन्न २ नामों से कहते हैं। प्राचीन साहित्य में जैसा कि हम पूर्व में देख चुके हैं, वीरपोशाल—महावीर स्वामी की पौषध-शाला नाम से प्रख्यात थी। श्रीजिनवर्द्धनसूरिजी से लगाकर जितना भी साहित्य उपलब्ध है सभी इस स्थान को वीर पोशाल मानने में एक मत हैं। कवि विजयसागर इसे ४६ हाथ लंबी और सौभाग्यविजय इसकी स्वर्णभण्डार नाम से प्रसिद्धि सूचित करते हैं। इसका सामने का पत्थर चमकीला-चिकना और इतना सुदृढ है कि तोप के गोले एवं बारूद के

प्रयोग भी इसे खोलने में असमर्थ रहे। द्वार का चिन्ह स्पष्ट है, पर कहाजाता है कि पुण्यवान् के विना तामसिक प्रयोगों से यह खुलनेवाला नहीं जो हो यह तो मानना पड़ेगा कि ऊपरी हिस्से में दरार पड़ जाने पर भी सामने की दीवार का कुछ भी नहीं विगड़ा प्रस्तुतः गुफा के बाहर व भीतर कतिपय लेख खुदे हुए हैं जिन में कुछ ब्राह्मीलिपिके हैं। इन लेखों का परिचय इस प्रकार है—

(१) गुफा में प्रवेश करते हो सामने की सुदृढ़ दीवार पर लगभग ३ फीट लम्बा बड़े बड़े अक्षरों में ब्राह्मीलिपि का लेख खुदा हुआ है।

(२) स्वर्णभण्डार के प्रवेश द्वारपर कई लेख उत्कीर्णित है जिनके अक्षर बहुत कम और बड़े बड़े हैं :—

(A) यह १।। फीट लम्बा है पर अक्षर ७-८ से अधिक नहीं हैं:

(B) इस में कुल ४ अक्षर है।

(C) यह लेख बाहर की दीवाल पर १।। फीट लंबा और ऊंचा है।

(D) यह लेख गुफा के प्रवेश द्वार के आगे २ पंक्तियों में उत्कीर्णित है। जो इस इस प्रकार पढने में आता है :—

निर्व्वाण लाभाय तपस्वि योग्ये शुभे गुहेऽर्हत्प्रतिमा प्रतिष्ठे
आचार्य रत्नं मुनि वैरदेवः विमुक्तयेऽकारय दीर्घ तेजः

यह लेख ईसा की चतुर्थ शताब्दी के आसपास का है इसकी लिपि गुप्तकालीन है राजा समुद्रगुप्त के इलाहाबाद के स्तंभगत अभिलेख के अक्षरों से इसके अक्षर प्राय: मिलते जुलते हैं। जिन वज्रदेव आचार्य का नाम प्रतिष्ठापक के रूप में इस लेख में आया है वे किस शाखा में और कब हुए ? यह विद्वानों को प्रकाश में लाना चाहिए। इन आचाय महाराज द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमा कौन सी है ? निम्नोक्त चौमुखजी के लेख से इसके अक्षर प्राचीन है।

(३) इस गुफा में प्रवेशद्वार के समक्ष मध्य में खड्गासन ध्यानस्थित ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ और अभिनन्दन प्रभु की चौमुख प्रतिमाएं अवस्थित हैं जो एक ही पाषाणखण्ड-निर्मित है। प्रतिमाओं के दोनों ओर चामरधारी इन्द्र, अधरस्थित पुष्पमालाधारी देव पृष्ठ भाग में अशोक वृक्ष के पत्ते, छत्रत्रय के उपरिभाग में हथेलियां दिखाई गयी हैं। प्रस्तुत: प्रतिमाओं पर क्रमश: वृषभ, गज, अश्व और वानर के लांछन-चिन्ह बने हुए है। एक किनारे पर ५ पंक्तियों में निम्नोक्त लघु लेख उत्कीर्णित है।

ॐ रे व क व्य व: वे य स्य—हि ऱ ह स्ति देव धम्मो—त

स्वर्णभंडार के ऊपरिवर्त्ती चट्टान पर अष्टमङ्गलीक जैसे

कुछ चिन्ह अंकित मिले हैं। इनमें स्वस्तिक चिन्ह सर्वथा उलटा और प्रचीन होते हुए कला से सर्वथा शून्य है।

स्वर्णभंडार से संलग्न एक और नयी गुफा निकली है जिसके ऊपर छत नहीं है। इस गुफा की दीवाल में कतिपय जैन प्रतिमाएं पद्मासन ध्यानस्थ बनी हुई हैं। यहां छोटे छोटे लेख खुदे हुए हैं जिनका परिचय निम्नांकित है :—

(१) यह लेख एक फुट लंबा है जिस पर "स र नि क पो—" पढने में आता है। यह लेख गुप्तलिपि में है जो अनुमानतः चौथी पांचवीं शदी का होना चाहिये।

(२) यह १॥ फुट लंबा है

(३) यह ३॥ इंच लंबा है जिसमें कुल ३ अक्षर हैं:— "अ क ल" यह लेख भी गुप्तलिपि में उत्कीर्णित है।

(४) इस लेख में बड़े बड़े ६ अक्षर हैं

इस गुफा की जैन प्रतिमाएं-जो दीवाल में उत्कीर्णित हैं- की संख्या ६ है जिन में प्रथम कमल पर खड्गासनावस्थित प्रभु प्रतिमा हैं जिसके दोनों ओर पद्मासनस्थ दो जिन प्रतिमाएं हैं। प्रभु के पृष्ट भाग में अशोकवृक्ष छत्रत्रय एवं उभयपक्ष में अधरस्थित देव और तन्निम्न भाग में

चामरधारी इन्द्र खड़े हैं। इसी प्रकार की दूसरी प्रतिमा में अधरस्थित देवों के हाथ में पुष्पमालाएं, धारण की हुई हैं तीसरी प्रतिमा भी अजितनाथ प्रभु की पद्मासनस्थ है। जिसके उभय तरफ इन्द्र व सिंहासन में दोनों तरफ कोनों में २ जिन प्रतिमाएँ एवं मध्यस्थित धर्मचक्र के उभयपक्ष में गजयुगल लांछनरूपेण उत्कीर्णित हैं। चतुर्थ प्रतिमा के सिंहासन में धर्मचक्र के दोनों ओर सिंह और उसके पास दोनों ओर अर्हन्त प्रतिमाएँ विराजित हैं। प्रभु के उभयपक्ष-स्थित चामरधारियों के उपरिभाग में अधरस्थित हाथ जोड़े देव युगल दिखाये हैं। भामण्डल के दोनों ओर अग्निशिखा दिखलायी गयी हैं। पाँचवीं प्रतिमा भी महावीर स्वामी की इसी प्रकार की है। प्रवेशद्वार के बायीं ओर ऐसी ही महावीर प्रतिमा है जिसके ऊपर अशोकवृक्ष एवं निम्न-भाग में अर्द्धनम्र भक्त अवस्थित है।

करण्ड वेणु वन बिहार—वैभारगिरि जाते दाहिनी ओर एक आश्रम व मन्दिर आदि सुरम्य हरियाली वाला स्थान है जिसे पूर्वकाल में करण्ड वेणु वन कहते थे यहां की विशाल बौद्ध प्रतिमा जो अभी बरमी मन्दिर में अवस्थित है श्याम पाषाण की है और स्कंधों के उपरि भाग में उभयपक्ष में अर्द्ध गोलाकार (Semi circle) में निम्नोक्त सुप्रसिद्ध बौद्ध

श्लोक उत्कीर्णित हैं श्लोक की एक एक पंक्ति प्रतिमा के दाहिनी और बांयी ओर खुदी हुई है।

ये धम्मा हेतु पभवा तेषां हेतुं तथा गतोयं।
तेषां च यो निरोधो एवं वादि महा समणोः॥

इसके निकटवर्त्ती एक प्राचीन स्तूप का चिन्ह अभी तक विद्यमान है। ऊपर लिखे सभी स्थान वर्त्तमान में सरकारी पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में हैं।

गांव मन्दिर

"राजगिर" गांव में श्वेताम्बर जैनमन्दिर सब से प्राचीन है। कवि जयकीर्ति ने गांव में ३ मन्दिरों का एवं अन्य कवियों ने १ मन्दिर का उल्लेख किया किया है। एक ही विशाल मन्दिर में बने हुए तीन मन्दिरों को संख्या में एक और तीन गिनने से यह भेद रहा है। मन्दिर में प्रवेश करते ही पेढी और तदुपरान्त दादा साहब की देहरी आती है उसमें महाप्रभावक युगप्रधान दादा श्री जिनदत्त सूरिजी महाराज के एवं श्री जिनभद्रसूरिजी की प्राचीन चरणपादुकाएं विराजमान हैं। जिनालय में प्रवेश करते दाहिनी ओर मुनिसुव्रत स्वामी बाँये तरफ पार्श्वनाथ स्वामी और ऊपर श्री आदिनाथ प्रभु का मन्दिर है जिनमें बहुत

से पाषाण व धातुमय प्राचीन जिनबिम्ब विराजमान हैं। अत्रस्थित कतिपय प्राचीन मूर्त्तियों, का परिचय दिया जाता है :—

श्री मुनिसुव्रत स्वामी की प्रतिमा भव्य, शान्त, सुन्दर और आह्लादकारी है। प्रस्तुत : प्रतिमा श्याम पाषाण निर्मित सपरिकर है प्रभु के सिंहासन में उभयपक्ष में सिंह बने हुए हैं जिनकी निर्माण कला शुभशील गणि प्रतिष्ठित और महत्तियाण श्रावक निर्मापित मूर्त्तियों के सिंहासनस्थ सिंहों से ठीक मिलती जुलती है। तन्निम्नवर्त्ती अभिलेख जो अब नष्ट प्राय: हो चुका, में 'जिनदास' शब्द स्पष्ट उल्लिखित है इससे प्रस्तुत प्रतिमा की प्रतिष्ठा सं०-१५०४ में हुई अनुमान की जा सकती है। कइयों का मत है कि ये सब प्राचीन प्रतिमाएं गुप्त और पाल काल के मध्य की निर्मित है जिनमें पीछेसे सं० १५०४ के प्रतिष्ठा लेख खुदवाये गये। किन्तु मेरे ख्याल से ऐसा नहीं, यदि वे पुरानी प्रतिमाओं पर ही लेख खुदवाते तो सब एक ही शैलीपर क्यों ? अष्ट महाप्रतिहार्यों का अभाव एवं कला का ह्रास भी इस बात को अवभासित करता है। मस्तकाभिषेक करते हुए युगल गजारूढ़ तथा मस्तक आदि इतर अङ्ग-विन्यास १५ वीं शदी की कलासे अभिन्न प्रतीत होता है। पाल काल तक प्रचलित

कमलासन का इसमें प्रभाव है । प्रभु के उभय पक्ष में दाहिने हाथ में चामर लिये इन्द्र खड़े हैं । तदुपरि दो दो काउसग्ग मुद्रास्थित अर्हन्त प्रतिमाएं उत्कीर्णित हैं । परिकर के ऊपरि-भाग में उभयपक्ष में अलंकृत गजारूढ व्यक्ति मस्तिकाभिषेक करते हुए दिखाई देते हैं जिनके उपर आकाश में पुष्पमाला लिए देव अवस्थित हैं । प्रभु के मस्तकपर छत्रत्रय और पृष्ठभाग में पांखड़ियोंवाला भामण्डल विराजमान है ।

दूसरी प्रतिमा श्री आदिनाथ प्रभु की अत्यन्त सुन्दर, प्राचीनतम और शिल्पकला का एक अनुपम उदाहरण है । "प्रलंब बाहु सुविशाल लोचनम्" विराजित प्रस्तुत प्रतिमा के मस्तकोपरि सुसज्जित जटाजूट और उभय स्कन्धों पर फैली हुई केशावलि बड़ी ही आकर्षक प्रतीत होती है । प्रभु सिंहासन के ऊपर कमलोपरि विराजमान है । वेदीमें उभय-पक्षमें बने हुए वृषभयुगल बड़े पुष्ट और ऊंचा मुख किये प्रभुका मुखकमल निहारते हुए व्यक्त किये हैं, तन्मध्यवर्त्ती देवी अपने चारों हाथों में विभिन्न प्रकार के आयुध लिए बैठी है उसके दाहिनी तरफ अपना दाहिना गोड़ा नीचे कर हाथ में माला धारण किया हुआ भक्त दिखाया गया है । प्रभु के उभयपक्ष में दीर्घकाय चामरधारी इन्द्र खड़े हैं जिनके गले में हार कमर में कंदोला और जनेऊ धारण की हुई है देह

श्री ऋषभदेव, गाव मन्दिर

राजगृह

श्री ऋषभदेव. गात्र मन्दिर

पर वस्त्र चिन्ह स्पष्ट है। तदुपरि अधरस्थित पुष्पमालाधारी देव अवस्थित है जिनके ऊपर अदृश्य देव दुन्दुभि दिखायी गयी है। कमलासन के निम्नभाग में उत्कीर्णित निम्नोक्त अभिलेख है जो सहस्राब्दी प्राचीन है। इसमें निर्माणकाल या प्रतिष्ठापक आचार्य का नाम न होकरकेवल निर्माता का नाम ही लिखा है :—देय धम्मोयं जलाहलकस्य" भामंडल विद्यमान है सिंहासन के कोने में चिन्ह निर्मित है। इसके छत्रत्रय का अंश खंडित हो गया हैं।

हम जैन और बौद्ध प्रतिमाओं में 'देय धम्मोयं' तथा 'देव धम्मोयं व दे धम्मोयं' शब्द का व्यवहार प्राचीन प्रतिमाओं में समान रूपसे पाते हैं। उस जमाने में देवताओं की मान्यता अधिक थी और उनके मान्य धर्म को श्रेष्ठ समझा जाता था। इसी तरह जैन और बौद्ध साहित्य में देवाणुप्पिय" शब्द प्रिय और सम्मान सूचक वाक्यार्थ में लिया गया है। दूसरा रूप "देयधम्मोयं" है जो दान धर्म की विशेषता सूचित करता है। पड़ोसी धर्म संस्कृति की छाप बहुधा पड़ती ही है। गुप्तकाल में सभी धर्मों के स्थापत्य में कमल को प्रचूरता थी कमल भारतीय संस्कृति का प्रतीक था। तीर्थंकरों के कमल पर विराजने व स्वर्ण कमल पर विचरने के उल्लेख जैन-शास्त्रों में हैं इसी तरह

जैन धर्म मान्य अष्ट प्रातिहार्यान्तर्गत अदृश्य देव दुन्दुभी को भी जैनेतर धर्मों ने खूब अपनाया। दशवीं ग्यारहवीं शती तक इस प्रान्त में बौद्धधर्म का प्रभाव मध्यान्ह काल में था। विहारप्रान्त में तत्कालीन निर्मित बौद्ध प्रतिमाएं तारा, अवलोकितेश्वर, बोधिसत्त्व बुद्ध व भिन्न २ तांत्रिक देव देवियों की प्रतिकृतियां हजारों की संख्या में प्राप्त हुई हैं और होती जा रही है। जो अब भिन्न २ हिन्दू धर्म मान्य देव देवियों के नाम से पूजी जाती हैं उनमें "ये धम्मावाला बौद्ध श्लोक विद्यमान है। जैन शिल्प के प्रभाव से स्पष्ट प्रभावित है यदि खुदाई का बन्द काम आरंभ किया जाय तो प्रान्त के प्राचीन शिल्प स्थापत्य व संस्कृति पर प्रकाश डालने वाले असंख्य उपादान हस्तगत हो सकते है।

एक शान्तिनाथ प्रभु की प्रतिमा भी सं० १५०४ की प्रतिष्ठित है जिसके सिंहासन में उभय पक्ष में हरिण व मध्य में सुसुप्ता स्त्री मूर्ति हाथ जोड़े अवस्थित है।

दूसरे तले के मन्दिर में एकादश गणधर चरण एवं एक श्यामे पाषाण की आदिनाथ स्वामी की छोटी पंचतीर्थी प्रतिमा है जिसमें उभयपक्ष में चन्द्रप्रभ व संभवनाथ पद्मासनस्थ एवं नेमिनाथ व महावीर प्रभु की खड़ी प्रतिमाएं हैं, निम्नभाग में चामरधारी इन्द्र व दोनों ओर अधर देव

है उपरिभाग में छत्र के पास गजारूढ़ व्यक्ति अवस्थित है प्रतिमाजी के सिंहासन में दो सिंह एवं नीचे की चौकी पर यक्ष यक्षिणी, मध्य में वृषभ लांछन में उभय पक्ष में निम्नोक्त लेख उत्कीर्णित है -

स्मत ११९६ चैत मस सुदि १३ सतुर ने प्रतिमा का (रा) पित"

गांव मन्दिर में कितनी ही धातु और पाषाण निर्मित प्रतिमाएं विराजमान हैं जिन में कई प्रतिमाएं अतिशय सुन्दर हैं। अत्रस्थ एक पार्श्वनाथ स्वामी की सुन्दर प्राचीन पंचतीर्थी का लेख यहां उद्धृत किया जाता है :--

"संवत् ११६३ श्री खट्टकूपीय संताने श्री शान्त्याचार्य गच्छे श्राद् लोहर वर्मार्थ जाल्हकेन द्वितीय चैत्र शुक्ल पंचम्यां कारितेयम्"

इस मन्दिर का सं० १८१६ मेंा हुगली निवासी गांधी माणिकचंद ने जीर्णोद्धार करवाया था जिसका उल्लेख अत्रस्थित मुनिसुव्रत स्वामी के जन्मकल्याणक के चरण कमल के लेख में किया गया है। इन्हों ने उस समय क्षत्रिय कुण्ड में भी जीर्णोद्धार करवाया था जिससे सम्बन्धित लेख अत्रस्थित संग्रहालय में विद्यमान चन्द्रप्रभु स्वामी के चरणों पर उत्कीर्णित है।

गांव मन्दिर—संग्रहालय

गांव मन्दिर में सामने वाला कमरा "संग्रहालय" है। यहां १७ चरण पादुकाएं एवं २० जिन प्रतिमा विराजमान हैं जिनके कुछ अभिलेख बाबू पूरणचन्द जी नाहर ने लेखाङ्क २३६, २४०, २४८, २६१, २६२, २६४, २६५, २६६, २६७, १८४७ में प्रकाशित किये हैं। अप्रकाशित लेखों में कई महत्त्वपूर्ण हैं, निम्नोक्त लेख श्री गौड़ी पार्श्वनाथ जिनेश्वर की प्रतिमापर उत्कीर्णित है जिस के निर्माता जगतसेठ महताबराय की भार्या श्रृङ्गारदेवी और प्रतिष्ठास्थान राजगृह है।

॥ सं० १८२२ वर्षे मिती भाद्रपद शुक्ल अष्टम्यां शनिवासरे। सुश्रावक पुण्य प्रभावक श्री जगत सेठ जी महताबराय जी गहेलड़ा गोत्रे तद् भार्या श्री सिणगारदेवी प्रतिमा प्रतिष्ठितं श्री राजगृह नगरे॥ दर्शनात् मोक्ष पदं लभ्यते॥ श्री गौड़ी पार्श्वनाथ जी

अत्रास्थित मूर्तियां व चरण पांचो पहाड़ों के मन्दिरों से जीर्णोद्धारादि के कारण लाकर विराजमान किये गये हैं। इनमें से कइयों का परिचय आगे आचुका है अवशिष्ट कुछ मूत्तियों का परिचय दिया जाता है।

वैभारगिरि के उत्तुंग शिखर जो गौतमस्वामी की टूंक नामसे विख्यात है—के जिनालय की श्री महावीर

प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर है। यद्यपि प्रभु की मुखाकृति प्रस्तर के घिस जाने व पपड़ी उतर जाने से उतनी स्पष्ट नहीं रह पायी फिर भी कुशल शिल्पकारने प्रभु के अंगविन्यास की अभिव्यक्ति में प्राचीन शिल्प शास्त्र सम्मत नियमों द्वारा जो तक्षणकौशल्य व मगध देशस्थ शिल्पी के प्रचुर मूर्त्ति निर्मापक हाथों द्वारा स्वमस्तिष्कगत भावों और हृदय की स्फूर्तिमय उर्मियों का जो साकार रूप दिया है वह किसी की भावुक भक्त का हृदय अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहती। आजकल जो लोग कहते हैं बौद्ध प्रतिमाओं में जैसा भावों का व्यक्तीकरण है वैसा जैन प्रतिमाओं में नहीं। उन्हें राजगृह, मथुरा आदि की प्राचीनतम मूर्तियाँ विचार परिवर्तन को बाध्य करती हैं। हाँ यह कहने में मुझे संकोच नहीं होना चाहिये कि जिस बौद्ध धर्म ने जैनों से मूर्तिपूजा सीखी और कलाभिव्यक्ति की जबरदस्त प्रेरणा पाने के साथ साथ नाना मुद्रा और भावों के विकाश में आदर्श उन्नति करली जब कि जैनधर्म अपनी उन्नत कला को भूलकर इधर ७००-८०० वर्षों से उस कलाविहीन-मूर्तिनिर्माण में अग्रसर होकर लोगों को उपर्युक्त आक्षेप करने का अवसर देता है। बौद्धों में भूमिस्पर्श, पद्मासन, ध्यानस्थ, बैठी हुई अभयमुद्रा, खड़ी हुई अभयमुद्रा,

प्रवचन मुद्रा, परिनिर्वाणमुद्रादि नाना मुद्राएं पायी जाती है जब कि जैनों में तीर्थंकर मूर्तियां केवल पद्मासन और खड्गासन की ही प्राप्य है हां! दक्षिण की कुछ मूर्त्तियां अर्द्धपद्मासन मुद्रा में भी विद्यमान है। तेरहवीं शदी के बाद या मुसलमानों के आगमन के बाद भारतीय शिल्पकार का मूर्ति निर्माण के समय हाथ जैसा काम करता था मस्तिष्क और हृदय वैसा नहीं। आज जयपुर जैसे नगरों में जब कि दिन-रात कारखाने चल रहे हैं और मूर्तियों की फसलें उतर रही हैं ऐसी स्थिति में हम कहां से कलाकार का हृदय मूर्ति में प्रतिबिम्बित पा सकते है? अस्तु, प्रस्तुत: प्रतिमा गुप्तकालीन मालूम होती है, प्रभु के सिंहासन में उभयपक्ष में सिंह बने हुए है। प्रभु महावीर की प्रतिमा होने के कारण मध्यवर्ती लांछन भी सिंह उत्कीर्णित हैं। तदुपरि कमलासनस्थित वेदी पर प्रभु विराजमान है उभयपक्ष में बने हुए इन्द्र बड़े ही सुन्दर और दीर्घ लंबकाय है। उनके शरीर पर पहने हुए अलंकार तत्कालीन समाज में प्रचलित वस्त्रालंकार प्रथा के स्पष्ट प्रतीक हैं उनके मस्तकोपरि मुकुट कर्णों में कुण्डल गले में हार भुजाओं में भुजबंद, कर कंकण, कमर में कंदोला आदि बड़ी खूबी के साथ अंकित है। दोनों इन्द्रों

के हाथों में चामर है और दूसरा हाथ लंबा किया हुआ है जिसमें जंघा से आया हुआ उत्तरीय वस्त्र पकड़ा हुआ है। वस्त्र का अवशिष्ट अंश नीचे लटक रहा है। गोड़ों तक पहनी हुई धोती के सल खूब स्पष्ट है। गले में धारण की हुई जनेऊ भी मुक्तालंकृत सी प्रतीत होती है। तदुपरि उभयपक्ष में देवयुगल पुष्पमाला लिए अधरस्थित दिखाये गये हैं। प्रभु के पृष्ठ भाग में प्रभामण्डल और मस्तकोपरि दण्डयुक्त छत्रत्रय विराजमान है तदुपरि अशोकवृक्ष के शाखा-पत्र विद्यमान है।

इस संग्रहालय में वैभारगिरि के ५ वें मन्दिर से लायी हुई एक ऋषभदेव स्वामी की प्राचीन प्रतिमा है जिसके खण्डित कमलासन के बांयी तरफ चैत्यवन्दना करता हुआ भक्त अवस्थित है जो शायद मूर्त्ति निर्माता हो। निम्नभाग में बने हुए धर्मचक्र के उभयपक्ष में लांछन स्वरूप वृषभ युगल बैठे हुए हैं। आदीश्वर स्वामी पद्मासनस्थ विराजमान हैं जिनके मस्तक का जटाजूट स्कंध से नीचे तक लटक रहा है। उभयपक्ष में चामरधारी परिचारक खड़े हैं तदुपरि माला लिये देव अधर अवस्थित है। एक और प्रतिमा फिर इसी शैली की निर्मित विद्यमान है जिसके उभय पक्ष में चामरधारी तदुपरि पुष्पमालाधारी अधरस्थित देव

अवस्थित हैं। प्रभु के मस्तक पर छत्र विराजमान है जिसके उभयपक्ष में अदृश्य देव-दुन्दुभि दिखायी देती है। एक प्रतिमा सप्तफणमण्डित पार्श्वनाथ स्वामी की है जिसके निम्नभाग में सिंहासन के ऊपर गुंथी हुई सर्पाकृति प्रभु के पृष्ट भाग में भुजाओं के पीछे से हो स्कंध प्रदेश से ऊपर जाकर सप्तफणमय छत्राकृति हो गयी है तदुपरि छत्रत्रय विराजमान है प्रस्तुत: प्रतिमा के सिंहासन में उभय पक्ष में चैत्यवन्दना करती भक्त जोड़ी एवं परिकर के ऊपरि भाग में चामरधारी अवस्थित हैं। एक प्रतिमा वैभारगिरि छट्ठे मन्दिर की भी अति प्राचीन और कमलासनोपरि विराजमान है, ऊपर तोरण की आकृति बनी हुई है। प्रस्तुत: प्रतिमा के उभयपक्षस्थ स्तंभोपरि पट्टिका में दाहिनी करवट सुसुप्त स्त्री-मूर्त्ति विद्यमान है जो त्रिशला माता मालूम देती है। इनका दाहिना हाथ मस्तक के नीचे और बांया हाथ सीधा किया हुआ जंघापर रखा हुआ है। इसी शैली की जिनालय मण्डित ७ प्रतिमाएं हैं जिन में कई पद्मासन व कई खड्गासन की हैं। ऋषभदेव प्रभु की खंडित प्रतिमा के सिंहासन में दोनों ओर वृषभ एवं मध्य में चार भुजावाली एक पद्मासनस्थ देवी है इस प्रतिमा पर "देय धर्म्मोयं महुमलवालह कस्य" लेख खुदा है।

यहाँ एक नेमिनाथ भगवान की प्रतिमा सुन्दर एवं अति प्राचीन मालूम देती है प्रस्तुतः प्रतिमा श्याम पाषाण की है प्रभु के पृष्ठ भाग में बड़ा मसंड और उभयपक्ष में मकराकृति उत्कीर्णित है। पीठिका की निर्माण शैली एवं प्रभुका अंग विन्यास देखते गुप्तकाल से पूर्व—कुषाण काल की निर्मित प्रतीत होती है सिंहासन में उभय पक्ष में सिंह, मध्य में धर्मचक्र के नीचे लांछन स्वरूप संख युग्म एवं तदुभयपक्ष में दीप शिखा या मेरूशिखर जैसी आकृति अभिव्यक्त की है।

ऋषभदेव प्रभु को एक प्रतिमा जिसमें प्रभुके दाहिनी ओरका इन्द्र नष्ट हो गया है, कमलासन के नीचे स्तूप पर धमचक्र और उभयपक्ष में वृषभ लांछन बना हुआ है।

राजगृही की जैन प्रतिमाएं जैन संसार और शिल्प कला में अपना वैशिष्ट्य पूर्णस्थान रखती हैं। यहांका सुदृढ़ श्याम पाषाण भी अपनी खास विशेषता रखता है। यहां की प्राचीनतम मूर्त्तियां कई शैली की पायी जाती है जिनमें अधिकांश अष्ट महाप्रतिहार्ययुक्त हैं कतिपय नवग्रह मूर्त्ति युक्त है तो कइयों में अधिष्ठाता-मूर्त्ति निर्माता आदि उत्कीर्णित है। मूर्त्तिकलाविद् महाशय इस विषय में विशेष प्रकाश डालें तो उनकी निर्माण शैली, मूर्त्तिकला के विकाश

क्रमादि पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ सकता है। धर्मचक्र का चिन्ह जो आज राष्ट्र का प्रधान प्रतीक है और अशोक का कहा जाता है—जैन धर्म का एक प्रधान सांस्कृतिक चिन्ह है राजगृह की मूर्तियों में धर्मचक्र प्रचुरता से पाया जाता है तीर्थंकर के समक्ष धर्मचक्र चलता था और ऋषभदेव प्रभु के पधारने की स्मृति में बाहुबलि ने तक्षशिला में स्थापित किया था। आज जैनसमाज चाहे धर्मचक्र के चिन्ह को भूल गया हो पर राजगृह की प्राचीनतम प्रतिमाएं एवं तन्निहित इस प्रकार की सांस्कृतिक चेतनाएं हुए चिरकाल अनुप्राणित करती रहेगी।

शान्ति-भवन

पुरातत्त्व प्रेमी सुप्रसिद्ध संग्राहक स्वनामधन्य स्वर्गीय बाबू पूरणचंद्र जी नाहर का यह निजी स्थान है। इसके अहाते में प्रवेश करने पर खूब विशाल मैदान है जिसके दाहिनी ओर ऊंचे विशाल स्थान को स्वर्गीय कलाप्रेमी नाहर जी ने पुरातत्त्व वाटिका का रूप दे दिया है। इसमें निर्मित क्यारियों के मध्य में नाना प्रकार के बौद्ध स्तूपों को संग्रहीत कर उन्हें इटों की वेदियां बना कर तदुपरि सुशोभित कर दिये हैं इन स्तूपों में अधिकांश भगवान

बुद्ध की जीवनी से सम्बन्धित नाना भाव और मुद्राएं व्यक्त की गयी हैं जो अनुमानतः संख्या में १५-१६ से कम नहीं होंगे। हिन्दू संप्रदायमान्य कितनी ही मूर्त्तियों का संग्रह है जिन में एक ही प्रस्तरखण्ड को सुघटित कर एक मूर्त्ति-मन्दिर बना हुआ है जिसके उभयपक्ष में विष्णु मूर्त्ति बनायी हुई है। नाहरजी को जहां कहीं भी पुरातत्व की सामग्री प्राप्त हुई, उन्होंने बड़े यत्नपूर्वक संग्रहीत कर अपने शान्तिभवन की इस वाटिका में सुसज्जित कर दी। सामने की दीवाल पर बने हुए ताक में कुछ बौद्ध व हिन्दू मूर्त्तियां लगी हुई हैं जिन में हरगौरी की ५-६ मूर्त्तियां हैं। अत्रस्थ पुरातत्त्व सामग्री में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु विपुलाचलस्थ पार्श्वनाथ मन्दिर की सं० १४१२ की महत्तियाण वंश की प्रशस्ति है जिसका उल्लेख आगे किया जा चुका है।

राजगृह तीर्थ अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। जो जिस अभिप्राय से वहां जाता है, चित्त को आनन्दित करने वाले उपादान वहां प्रस्तुत हैं पुरातत्त्व-शोधक वहां अपनी अन्वेषण रुचि को प्रगतिशील कर सकता है, भक्त हृदय जैन, हिन्दू और बौद्ध आदि मन्दिर-मूर्त्तियों के समक्ष भाव-भक्ति द्वारा अपना कल्याण कर सकता है। रोगी वहाँ का वायुसेवन एवं उष्णजलकुण्ड स्नान द्वारा आरोग्यलाभ

करते हैं, यही कारण है कि मनोरंजन के प्राकृतिक उपादान और इस स्वास्थप्रद स्थान में खासकर शीतकाल में विशाल धर्मशालाएं भी जनसमूह से आकीर्ण होकर संकुचित प्रतीत होने लगती हैं। इस पवित्र भूमि में विचरण करने वाले के हृदय में भगवान महावीर, बुद्ध आदि महापुरुषों की स्मृति ताजी हो जाती है और उसके द्वारा हृदयगत उद्दात आत्मतत्त्वों के विकाश को बड़ा प्रोत्साहन मिलता है। यहां के पहाड़ोंकी गुफाओं में खास कर वहां, जहां जनता का बिलकुल आवा-गमन नहीं होता — एकान्त प्रदेशोंमें योगी लोग अपने योग-साधनके अनुकूल स्थान चुनकर योगाभ्यास व आत्मध्यान में तल्लीन हो जाते हैं। सुप्रसिद्ध योगीश्वर श्रीचिदानन्दजी महा-राज ने भी सं० १६३३-३४ में यहां जो अनुभव प्राप्त किया उन्हीं के शब्दों में स्याद्वादानुभवरत्नाकर से यहां उद्धृत किया जाता है "दो चार दिन पीछे जब मैं विहारमें गया तो ऐसा सुना कि 'राजगिरी में बहुत से साधु गुफाओं में रहते हैं'। इसलिये मेरी भी इच्छा हुई कि उनसे अवश्य करके मिलूं। ऐसा विचार कर उन पहाड़ों की तरफ रवाना हुआ। फिर दिनमें तो राजगिरी में आहार पानी लेता और रात को पहाड़ के ऊपर चला जाता। सो कई दिन पीछे एक रात्रि में एक साधु को एक जगह बैठा हुआ देखा। मैं पहले तो दूर बैठा

हुआ देखता रहा। थोड़ी; देर में दो चार साधु और भी उनके पास आये। उन लोगों की सब बातें जो दूर से सुनी तो, सिवाय आत्म विचार के कोई दूसरी बात उनके मुँहसे न निकली, तब मैं भी उनके पास जा बैठा। थोड़ी देर के पश्चात् और तो सब चले गये पर जो पहले बैठा था वही बैठा रहा। मैंने अपना सब वृतान्त उससे कहा तो उसने धय्य दिया और कहने लगा तुम घबराओ मत, जो कुछ कि तुमने किया वह सब अच्छा होगा। उसने हठयोग की सारी रीति मुझे बतलाई, वह मैं पांचवें प्रश्न के उत्तर में लिखूंगा। एक बात उसने यह कही कि जिस रीति से बतलाऊँ उसरीति से श्री पावापुरी में जो श्री महावीर स्वामी की निर्वाणभूमि है। वहां जाय कर ध्यान करोगे तो किञ्चित् मनोरथ सफल होगा, पर हठ मत करना, उस आशय से चले जाओगे तो कुछ दिन के बाद सब कुछ हो जायगा, और जो तुम इस नवकार को इस रीति से करोगे तो चित्त की चंचलता भी मिट जायगी और हम लोग जो इस देश में रहते हैं सो यही कारण है कि यह भूमि बड़ी उत्तम है।' जब मैंने उनसे पूछा कि क्या तुम जैन के साधु हो। परन्तु लिंग (वेश) तुम्हारे पास नहीं उसका क्या कारण है ? तो वह कहने लगा कि भाई हमको श्रद्धा तो श्रीवीतराग के धर्म की है,

परन्तु तुमको इन बातों से क्या प्रयोजन है ? जो बात हमने तुमको कह दी है, यदि तुम उसको करोगे तो तुमको आपही श्री वीतराग के धर्म का अनुभव हो जायगा, किन्तु हमारा यही कहना है कि परवस्तु का त्याग और स्व वस्तु का ग्रहण करना और किसी भेषधारी की जाल में न फंसना। इतना कह कर वह वहाँ से चला गया।"

योगिराज श्रीचिदानंदजी ने राजगृह से उपर्युक्त योगी के निर्देशानुसार पावापुरीतीर्थ में जाकर ११ दिन के ध्यान द्वारा आत्मानुभव रसास्वादन किया था।

यहाँ हमेशा से शासकों द्वारा तीर्थक्षेत्र को सहाय्य-सुविधाएं मिलती रही हैं। बादशाह फीरोजसाह के समय का वर्णन आगे किया जा चुका है। सम्राट अकबर ने अन्य तीर्थों की भांति राजगृह के ५ पहाड़ भी श्वेताम्बर जैनों के आधीन कर दिये थे। सतरहवीं शती के सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हीरविजयसूरिजी को० सं० १६४६ वै० सु० १५ (सन् १५६२ ता०-१६ अप्रैल) तदनुसार ता०-७ उर्दी बेहेस्त रविउल अवल सन् ३७ जुलसी को दिये हुए फरमान में—जिसे मुनि जिनविजयजी ने कृपारसकोश में प्रकाशित किया है—स्पष्ट उल्लेख है। अब तो पूजनीय मन्दिरों पर ही जैनों का अधिकार रहा है प्राचीन मन्दिर

और गुफाएं सरकारी पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में आ गयो हैं। जैन वस्तुओं और अवशेषों को जैनसंघ अपने कब्जे मे ले तो अत्युत्तम हो परन्तु जैनसंघ पुरातत्त्वावशेषोंको नष्ट करना जानता है, रक्षा करना नहीं। जहां तहां तीर्थों में नाम के लोभ से प्राचीन शिलालेखों को नष्ट कर नये लगाये जाते हैं प्राचीन मूर्त्तियों को उठा कर नवीन मूर्त्तियां स्थापित की जा रही है। इन बातों से जैन संस्कृति और धर्म का कितना ह्रास हुआ है यह किसी भी पुरातत्त्वरसिक से छिपा नहीं है। प्राचीन शिलालेखादि की अनुपलब्धि से तीर्थ और मन्दिरों से हाथ धोना पड़ रहा है पर फिर भी जैनसमाज को आंखें नहीं खुलतीं। इस महानिद्रा के परिणाम स्वरूप भविष्य में हमें महान् दण्ड मिलेगा।